संक्षिप्त संस्करण

स्त्रियो, हमें क्षमा कीजिए!



विवाह और कलीसिया में पुरुष और स्त्री
संक्षिप्त। स्पष्ट। सहायक।

HANS-JÖRG RONSDORF

स्त्रियो, हमें क्षमा कीजिए!

संक्षिप्त संस्करण

विवाह और कलीसिया में पुरुष और स्त्री

संक्षिप्त। स्पष्ट। सहायक।

Hans-Jörg Ronsdorf

जर्मन पेपरबैक संस्करण www.hans-joerg-ronsdorf.de पर मँगाया जा सकता है।

मूल्य € 3.80, डाक-व्यय अतिरिक्त (जर्मन संस्करण)।

जर्मन संस्करण Kindle ई-बुक के रूप में भी उपलब्ध है।

चौथा संस्करण, नवंबर 2026 (जर्मन संस्करण)

जर्मन से अनुवाद, 2026 – www.hans-joerg-ronsdorf.de पर मुफ़्त डाउनलोड

© Hans-Jörg Ronsdorf – सर्वाधिकार सुरक्षित।

Albis 6½, 87477 Sulzberg

टाइपसेटिंग: Hans-Jörg Ronsdorf

सम्पर्क ई-मेल: hj-ronsdorf@t-online.de

जर्मन संस्करण का ISBN 978-3-9820715-6-5

आवरण-सज्जा: टोबियास श्ट्रिकर (Tobias Stricker)

प्रूफ़-संशोधन: गाब्रिएले ज़िंगर (Gabriele Singer)

मुद्रण: www.wir-machen-druck.de

जर्मन संस्करण में प्रयुक्त बाइबल-अनुवाद, यदि अन्यथा न बताया गया हो:

एल्बरफेल्डर अनुवाद (Elberfelder Übersetzung, जर्मन बाइबल अनुवाद), Edition CSV, Hückeswagen www.csv-bibel.de

इस हिन्दी अनुवाद में छोटे बाइबल-उद्धरण हिन्दी बाइबल (O.V., पवित्र बाइबिल) के अनुसार दिए गए हैं; जहाँ लेखक किसी जर्मन बाइबल-अनुवाद के शब्दों को उद्धृत करता है, वहाँ वे शब्द जर्मन से अनूदित हैं।

विषय-सूची

1 प्रस्तावना – फिर से एक पुस्तक क्यों? **6**

2 हमारी नींव – हम किस पर भरोसा करते हैं? **8**

3 आरम्भ की ओर लौटें – परमेश्वर क्या चाहता था **10**

4 सृष्टि की व्यवस्था – यदि हाँ, तो कौन-सी? **13**

5 जो आनेवाला था – पर जिसे परमेश्वर ने कभी नहीं चाहा **15**

6 यीशु, मसीह, और स्त्रियाँ **20**
- **6.1 याकूब के कुएँ पर सामरी स्त्री** **20**
- **6.2 यीशु के चरणों में – मार्था और मरियम** **21**
- **6.3 मरियम मगदलीनी, प्रेरितों की प्रेरिता** **22**

7 दुल्हन-कलीसिया और स्त्रियों की सेवा **23**
- **7.1 पौलुस और उसकी सहकर्मिणियाँ** **23**
  - 7.1.1 फीबे – सेविका (डीकन), अगुवा और पत्र-वाहिका 24
  - 7.1.2 एक आदर्श दम्पति: प्रिस्का और अक्विला 24
  - 7.1.3 यूनिया – प्रतिष्ठित प्रेरिता 25

8 क्या बहनों के लिए चुप रहने की कोई आज्ञा है? **26**
- **8.1 भविष्यद्वाणियों को परखना** **27**
- **8.2 पद 34 और 35 एक उद्धरण?** **27**
- **8.3 पद 34 और 35 बाद में जोड़े गए?** **28**

9 क्या बहनों के लिए शिक्षा देने पर कोई रोक है? **31**

10 सब विश्वासियों का याजकपद **35**

11 क्या बहनें प्राचीन हो सकती हैं? **37**

12 सिर ढाँकना – क्या आज भी? **40**

13 पुरुष सिर के रूप में – एकतरफ़ा अधीनता? **45**

14 न नर, न नारी **48**

15 हमारा अपराध-स्वीकार **50**

16 अन्त में **52**

17 लेखक की अन्य पुस्तकें **55**

1 प्रस्तावना – फिर से एक पुस्तक क्यों?

नवंबर 2020 में मेरी पुस्तक “स्त्रियो, हमें क्षमा कीजिए!” (Frauen, vergebt uns!) प्रकाशित हुई। जैसी आशा थी, नासमझी और रोष भी सामने आए। बाइबल पर विश्वासयोग्य रहनेवाले भाइयों को लगा कि इस शीर्षक ने उन्हें एक तरह से बंधक बना लिया है। वे क्षमा क्यों माँगें, जब स्त्री के विषय में उनकी समझ तो पवित्रशास्त्र के अनुसार है?

बात आज भी दो परस्पर विरोधी दृष्टिकोणों की है – नीचे दी गई तालिका में दोनों की तुलना भी देखिए।

> एक दृष्टिकोण स्त्री के ऊपर सिर के रूप में पुरुष के अधिकार को मानता है। कहा जाता है कि पतन से पहले ही सृष्टि की व्यवस्था ऐसी थी। इसलिए पत्नी अपने पति के अधीन रहती है, आराधना-सभा में चुप रहती है, और कलीसिया के भीतर और बाहर पुरुषों को न शिक्षा देती है और न उनकी अगुवाई करती है।
>
> विरोधी दृष्टिकोण सृष्टि के आरम्भ से ही समानता और परस्पर पूरकता में एक साझेदारी देखता है – पद-क्रम के किसी भेद के बिना। एक दूसरे के अधीन रहना आपसी जीवन की पहचान है। कलीसिया में बहनें सब क्षेत्रों में ठीक वैसे ही सेवा करती हैं जैसे भाई।

दोनों दृष्टिकोणों का आधार बाइबल से दिया जाता है। परन्तु ये दोनों विश्व-दृष्टियाँ आपस में मेल नहीं खातीं। बहुत-सी पुस्तकों के अध्ययन, व्याख्यानों को सुनने और बहुत-सी चर्चाओं के बाद मेरा यही निष्कर्ष है। यह परमेश्वर के सामने विलाप की बात है! हम एक कठिन धर्मवैज्ञानिक विवाद के सामने खड़े हैं, जो दुःख की बात है कि कलीसियाओं को बाँट देता है। मेरी इच्छा है कि इस पर अधिक खुलेपन से, अधिक तथ्यपरक ढंग से और अधिक शान्ति से वाद-विवाद हो।

इस छोटी पुस्तक में मैं दूसरे दृष्टिकोण का समर्थन करता हूँ और उसे समझाता हूँ। पहले दृष्टिकोण को मैंने अपनी आयु के 54वें वर्ष तक माना और सिखाया। पवित्रशास्त्र के अध्ययन के कारण मुझे दूसरे दृष्टिकोण की ओर आना पड़ा। इस पर मैंने एक विस्तृत पुस्तक लिखी है। बहुत-सी बहनों के लिए वह पुस्तक एक ऐसी मुक्ति थी, जिसकी वे लम्बे समय से, जाने या अनजाने, लालसा कर रही थीं – एक भावनात्मक राहत। कुछ प्रतिक्रियाओं ने मुझे आनन्द के आँसुओं तक, पर दुःख के आँसुओं तक भी, भावुक कर दिया। इस विषय में अब भी बहुत कुछ बिगड़ा हुआ है। इसके लिए वे भाई ज़िम्मेदार हैं जो सोचते हैं कि वे बाइबल को ठीक समझते हैं। अपनी समझ के आधार पर वे स्त्रियों को आराधना-सभाओं में बोलने, शिक्षा देने और अगुवाई के कामों से रोकते हैं। बहुत-सी बहनें इसे न समझ पाती हैं, न इसका तर्क पकड़ पाती हैं। बहुत-सी इससे दुःख उठाती हैं, पर इसके विषय में चुप रहती हैं।

इस बीच मेरी पुस्तक कुछ हद तक फैल चुकी है, परन्तु भाई उसे पढ़ने से इनकार करते हैं। वे कहते हैं कि वह बहुत जटिल है, बहुत लम्बी है, बहुत एकतरफ़ा है, बहुत पक्षपाती है, बहुत नारीवादी है। इसलिए एक बार फिर यह छोटी और सरल पुस्तक। अधिक और विस्तृत सामग्री के लिए मैं अपनी वेबसाइट की ओर संकेत करता हूँ: **www.hans-joerg-ronsdorf.de**।

चाहे मैं परमेश्वर के सामने आश्वस्त हूँ कि मैं ठीक कर रहा हूँ, फिर भी मुझसे भूल हो सकती है। पर मैं मसीह और उसके वचन के प्रति बँधा हुआ हूँ। मैं भी अपने विवेक से बँधा हूँ। बात केवल एक धर्मवैज्ञानिक या सैद्धान्तिक विवाद की नहीं है, बात मसीह की आधी देह की है, मनुष्यों और उनके जीवन की है!

Hans-Jörg Ronsdorf, Sulzberg, नवंबर 2026

पुरुष और स्त्री का पद-क्रमवादी दृष्टिकोण: अधीनता, अधिकार, सिर: पद-क्रम केन्द्रित	**पद-क्रम के बिना परस्पर पूरकता: गलातियों 3:28 – मसीह में सब एक! – वरदान केन्द्रित**
सृष्टि की व्यवस्था में पद-क्रम है, पुरुष स्त्री के ऊपर है, मूल्य में बराबर, पर अधिकार में बराबर नहीं।	बराबर के रूप में रचे गए, दोनों परमेश्वर के स्वरूप के वाहक हैं, वे एक दूसरे के पूरक हैं, आमने-सामने बराबरी पर, समान दर्जे के।
उत्पत्ति 3:16 “वह तुझ पर प्रभुता करेगा” को एक नियम / आज्ञा समझा जाता है, न कि पतन का एक बुरा परिणाम।	उत्पत्ति 3:16 पतन के दुःखद परिणामों का वर्णन करता है, जिन्हें परमेश्वर नहीं चाहता था और जो दुर्भाग्य से इतिहास में ऐसे ही घटित हुए।
हव्वा को धोखा दिया गया, इसलिए स्त्रियाँ शिक्षा नहीं दे सकतीं।	आदम ने जान-बूझकर पाप किया, हव्वा बहकाई गई। शिक्षा देने पर लगी रोक लिंग से नहीं, बल्कि इस बात से सम्बन्धित है कि शिक्षा सुसमाचार के अनुरूप है या नहीं।
स्त्री कलीसिया में चुप रहती है। अपने घर में भी, जब शिक्षा की बात हो, वह अपने पति के सामने चुप रहती है।	पुरुष और स्त्रियाँ मिलकर भविष्यद्वाणी करते हैं, जैसा पिन्तेकुस्त के दिन हुआ। योएल 2:28-29; प्रेरितों के काम 2:17
सिर होने का अर्थ है पुरुष का अधिकार।	सिर और देह एकता और परस्पर निर्भरता पर बल देते हैं।
स्त्रियों को पुरुष पर कोई अधिकार नहीं होना चाहिए।	एक दूसरे के अधीन रहना, शरीर पर अधिकार और स्वामित्व, 1 कुरिन्थियों 7:4
केवल पुरुष ही अगुवाई कर सकते हैं और प्राचीन तथा सेवक (डीकन) हो सकते हैं।	आत्मिक वरदान लिंग से बँधे नहीं हैं।
गलातियों 3:28 “न कोई नर, न नारी ... तुम सब मसीह यीशु में एक हो” का अर्थ केवल उद्धार में एक आत्मिक समानता है, जो सृष्टि की व्यवस्था को रद्द नहीं करती।	गलातियों 3:28 मसीह में नई सृष्टि का वर्णन है, जो कलीसिया में अभी से उपस्थित है। ठीक वहीं सब सामाजिक और लैंगिक भेद पूरी तरह मिट जाते हैं।

2 हमारी नींव – हम किस पर भरोसा करते हैं?

सब मसीही आचरण के लिए निर्णायक, हाँ, उसकी कसौटी केवल बाइबल है और रहेगी। जैसी वह आज हमारे पास है। वही हमारा एकमात्र और भरोसेमंद स्रोत है। उसी पर सब कुछ परखा जाना है। परम्पराएँ भी। चाहे वे बहुत पुरानी हों या नई। अकसर बाइबल का सत्य – या कहना चाहिए: जिस तरह हम उसे समझते हैं – और मसीही परम्परा बराबर मान लिए जाते हैं। परम्पराएँ पवित्रशास्त्र की ग़लत समझ पर टिकी हो सकती हैं। उतना ही भटकानेवाला है युग की आत्मा के अनुसार ढल जाना। तब समय के साथ ऐसे विश्वास और रीतियाँ जुड़ती और पक्की होती जाती हैं जो अपने समय से बाहर हो चुकी हैं, क्योंकि वे बीती हुई सदियों की, या केवल कुछ दशकों की संस्कृति को दर्शाती हैं।

वे सुसमाचार के मार्ग में बाधा बन जाती हैं।

लोग कुछ बढ़ा-चढ़ाकर कहते हैं: बाइबल से तो कुछ भी सिद्ध किया जा सकता है। यह सचमुच हमारे लिए एक चुनौती है, क्योंकि यह बात सच है। मसीहियों के बीच कितने परस्पर विरोधी मत हैं, और सबका आधार कम या अधिक अच्छे ढंग से बाइबल से दिया जाता है। बाइबल का कोई विषय ऐसा नहीं जिसकी कम से कम दो या अधिक व्याख्याएँ न हों।

कुछ नियम या सिद्धान्त हैं, जिनका ध्यान बाइबल पढ़ते समय और उसे अपने व्यक्तिगत या कलीसियाई जीवन पर लागू करते समय रखना चाहिए। मैं कुछ का उल्लेख करता हूँ, जो हमारे विषय के लिए और हर दूसरे विषय के लिए भी महत्वपूर्ण हैं।

पाठ किससे बात कर रहा है? पुराने नियम के निर्देश, उदाहरण के लिए याजकों को दिए गए, आज के कलीसियाई जीवन के लिए लागू नहीं होंगे। इसे “उद्धार-इतिहास के अनुसार बाइबल की व्याख्या” कहा जाता है। ध्यान दिया जाता है कि कोई कथन किस समय में और किस समय के लिए लागू है। क्या ये कथन इस्राएल राष्ट्र को दिए गए हैं या नए नियम की कलीसिया को?

क्या कलीसियाई जीवन के लिए कोई निर्देश स्पष्ट और साफ़ है, और क्या वह कई बार आता है? तब उसे एक मानक और हर युग के लिए लागू निर्देश कहा जा सकता है। इसके विपरीत, कठिन पाठों को, विशेषकर जब उनका मुख्य कथन नए नियम में केवल एक बार आता है और जिन पर बाइबल पर विश्वासयोग्य बहुत-से धर्मविज्ञानी और व्याख्याकार एकमत नहीं हैं, सब पर बाध्यकारी नियम नहीं बनाना चाहिए।

पाठ का सन्दर्भ निर्णायक है। सन्दर्भ से काटकर निकाले गए कथन हर बात और हर शिक्षा का समर्थन कर सकते हैं। आख़िरकार हम यह नियम दूसरे साहित्य को पढ़ते समय भी मानते हैं। इसमें केवल निकट का सन्दर्भ ही नहीं गिना जाता, बल्कि अन्त में पूरे पवित्रशास्त्र का सन्दर्भ। प्रश्न यह है कि क्या व्याख्या बाइबल की सम्पूर्ण तस्वीर में भी ठीक बैठती है।

उसी प्रकार **ऐतिहासिक सन्दर्भ और पृष्ठभूमि** भी गिनी जाती है – उस समय और स्थान की, जिसमें कोई पाठ लिखा गया। ऐसे ज्ञान के बिना भी बाइबल पढ़ी जा सकती है। इससे उसकी ईश्वरीय सामर्थ्य में कोई कमी नहीं आती। पर ऐतिहासिक पृष्ठभूमि जानना हमेशा सहायक होता है। नए नियम की लगभग सब पत्रियाँ तो किसी तात्कालिक कारण से सम्बन्धित कलीसिया को लिखी गई थीं। हम उस कारण को फिर से समझने का प्रयास करते हैं।

कभी-कभी यह महत्वपूर्ण होता है कि **मूल भाषा में किसी शब्द का क्या अर्थ है**। क्योंकि बाइबल की इब्रानी और यूनानी भाषा आज बोली नहीं जाती, और हम बिलकुल दूसरी भाषा बोलते हैं। सटीक अनुवाद महत्वपूर्ण है। पर वह भी हमेशा कुछ हद तक व्याख्या होता है। और अनुवादक इस या उस बात के विषय में जैसा सोचता है, उसका प्रभाव उसके अनुवाद पर पड़ेगा। इसके पर्याप्त उदाहरण हैं।

अन्त में यहाँ इस बात की ओर संकेत कि कुछ बातें **अक्षरशः या शब्दशः**, पर कुछ दूसरी **चित्रात्मक या दृष्टान्त के रूप में** समझी जानी चाहिए। शायद यह कुछ हद तक सृष्टि के वृत्तान्त पर भी लागू होता है।

3 आरम्भ की ओर लौटें – परमेश्वर क्या चाहता था

यदि हम पुरुष होने और स्त्री होने को और उनके आपसी सम्बन्ध को समझना चाहते हैं, तो कहाँ से आरम्भ करें? स्वाभाविक है: हम सृष्टि के वृत्तान्त के पास जाते हैं। वही हमें सबसे महत्वपूर्ण सामग्री देता है। नए नियम में पौलुस ही है, जो कई बार इस आरम्भ का हवाला देता है, जब वह कुरिन्थुस और इफिसुस की समस्याओं और बुराइयों की आलोचना करता और उन्हें सुधारता है। वह सृष्टि के वृत्तान्त को कभी सामान्य रूप में, पर कभी विशेष रूप में भी लागू करता है। **केवल पौलुस के शब्दों के द्वारा इस सृष्टि-वृत्तान्त की व्याख्या करना पर्याप्त नहीं है।** पहले हमें भी अदन की वाटिका में जाना है और देखना है कि वहाँ क्या हुआ और कैसे हुआ। बाद में हम पौलुस पर लौटेंगे।

आइए, हम मानव-इतिहास के आरम्भ में चलें। मैं पाठ को एल्बरफेल्डर बाइबल (जर्मन बाइबल अनुवाद) से अनूदित करके दे रहा हूँ:

> उत्पत्ति 1:26-28 और परमेश्वर ने कहा: हम मनुष्य को अपने स्वरूप में, अपनी समानता के अनुसार बनाएँ; और वे समुद्र की मछलियों पर, और आकाश के पक्षियों पर, और घरेलू पशुओं पर, और सारी पृथ्वी पर, और पृथ्वी पर रेंगनेवाले सब जन्तुओं पर अधिकार रखें! और परमेश्वर ने मनुष्य को अपने स्वरूप में रचा, परमेश्वर के स्वरूप में उसने उसको रचा; नर और नारी करके उसने उन्हें रचा। और परमेश्वर ने उन्हें आशीष दी, और परमेश्वर ने उनसे कहा: फूलो-फलो और बढ़ो, और पृथ्वी में भर जाओ और उसको अपने वश में कर लो; और समुद्र की मछलियों पर, और आकाश के पक्षियों पर, और पृथ्वी पर चलनेवाले सब जीव-जन्तुओं पर अधिकार रखो!

सृष्टि के छठे दिन, जब पहले पशु रचे जा चुके थे, मनुष्य दृश्य पर आता है। पुरुष और स्त्री के रूप में मनुष्य। एक ही साँस में दोनों लिंगों का नाम लिया जाता है। दोनों, हर एक अपने आप में और दोनों मिलकर भी, परमेश्वर के स्वरूप के वाहक हैं। बिना भेद के। बिना ऊँच-नीच के। बिना पद-क्रम के। दोनों को मिलकर सृष्टि पर अधिकार रखना है। इसका अर्थ है, उसकी देखभाल के साथ उसका प्रबन्ध करना और उसकी रक्षा करना। इसके लिए दोनों लिंगों की आवश्यकता है।

छठे दिन संसार अभी व्यवस्थित है, और वैसा ही है जैसा उसे होना चाहिए।

एक दूसरा वृत्तान्त भी है, जो अब मनुष्य की सृष्टि की घटना पर “ज़ूम” करता है। पुराने नियम के, इब्रानी बाइबल के, ये अति प्राचीन पाठ सचमुच रहस्यमय हैं, हमारे लिए आज शायद समझने में पूरी तरह सरल नहीं। यहाँ भी प्रश्न उठता है कि क्या अक्षरशः और क्या चित्रात्मक अर्थ में कहा गया है। हम आज के मनुष्यों के लिए कुछ प्रश्न खुले रह जाते हैं। हम शायद इस वृत्तान्त को दूसरे ढंग से या अधिक विस्तार से लिखते। ख़ैर, जो हमारे पास है, उसी से हमें सन्तुष्ट रहना है। मूल बातों में सब कुछ हमारे लिए समझ में आनेवाला और सुसंगत है, और गहरा भी। केवल परमेश्वर ही हम पर ये घटनाएँ प्रकट कर सकता है। चाहे दो मनुष्य वहाँ उपस्थित थे, फिर भी उन्होंने नहीं, बल्कि मूसा ने बाद में इसे लिखा।

आगे के वृत्तान्त से स्पष्ट है कि आदम पहले रचा गया:

> उत्पत्ति 2:18-20 और यहोवा परमेश्वर ने कहा: मनुष्य का अकेला रहना अच्छा नहीं; मैं उसके लिए एक सहायक बनाऊँगा, जो उसके अनुरूप हो। और यहोवा परमेश्वर ने भूमि में से मैदान के सब पशुओं और आकाश के सब पक्षियों को रचा, और उन्हें मनुष्य के पास ले आया कि देखे कि वह उनका क्या नाम रखता है; और जिस-जिस जीवित प्राणी का जो-जो नाम मनुष्य रखे, वही उसका नाम हो। और मनुष्य ने सब घरेलू पशुओं, और आकाश के पक्षियों, और मैदान के सब पशुओं के नाम रखे। परन्तु आदम के लिए उसने कोई ऐसा सहायक न पाया जो उसके अनुरूप हो।

आदम अकेला है। सृष्टिकर्ता स्पष्ट कर देता है कि पशुओं में से कोई भी उसके अनुरूप नहीं। इस क्षण आदम को काम का कोई पशु नहीं चाहिए, न ही विश्वासयोग्य मित्र के रूप में कोई कुत्ता। नहीं, उसे किसी ऐसे की आवश्यकता है जो उसके अनुरूप हो। आत्मा और हृदय का एक मित्र। एक सामने खड़ा साथी। तो क्या परमेश्वर अकेलेपन और सूनेपन को समाप्त करने के लिए एक दूसरा आदम नहीं रच सकता था? परन्तु उसे दूसरे आदम की कमी नहीं है। उसे एक सहायक की कमी है। एक ऐसी, जो उसके अनुरूप हो। अर्थात् एक मनुष्य। समान बल वाली। किसी दास या सहायक कर्मचारी की कमी नहीं है। वह भी सहायता कर सकता था। पर वह उसके अनुरूप नहीं होता। वह उसके अधीन होता। बात है एक सामने खड़ा साथी पाने की, उसके जैसा एक मनुष्य। समान बल वाला एक व्यक्तित्व। जिसके साथ वह एक हो सके। एक जोड़ीदार, उसके अस्तित्व के हर पहलू की एक पूर्ति।

आदम इसलिए पहले नहीं रचा गया कि उसे सिर या अगुवा होना था। नहीं, वह इसलिए पहले रचा गया कि वह अकेलेपन का अनुभव करे और उसे महसूस करे। यह उसके अनुरूप सहायक से मिलने और उसके साथ जीवन बिताने की उसकी तैयारी है।

आगे का पाठ, जो स्त्री की सृष्टि का वर्णन करता है, रहस्यमय है, पर बहुत कुछ कहनेवाला भी:

> उत्पत्ति 2:21-22 और यहोवा परमेश्वर ने मनुष्य पर गहरी नींद डाली, और वह सो गया (entschlief)। और उसने उसकी पसलियों में से एक निकाली और उसके स्थान को मांस से बन्द कर दिया; और यहोवा परमेश्वर ने उस पसली से, जो उसने मनुष्य में से निकाली थी, एक स्त्री बनाई, और उसे मनुष्य के पास ले आया।

सोते हुए आदम की बगल से परमेश्वर पहली स्त्री को गढ़ता है। अनुवाद के विषय में एक संकेत: जर्मन अनुवाद का शब्द “entschlief” प्रायः मृत्यु के लिए भी प्रयुक्त होता है – पर आदम चिर-निद्रा में नहीं सोया, क्योंकि तब तो वह मर जाता। और बात किसी पसली की भी नहीं, बल्कि उसके शरीर की एक बगल की है।

इन थोड़े-से शब्दों से हम क्या सीखते हैं? स्त्री पुरुष में से ली गई है, मिट्टी से नहीं गढ़ी गई। ताकि वह उसके अनुरूप हो सके। वह उसकी बगल से ली गई है, ताकि फिर स्त्री के रूप में – चित्र की भाषा में कहें तो – इस बगल को फिर से पूरा कर दे। उसकी बगल से वह ली गई है, ताकि उसकी बगल में रहे। उसके नीचे नहीं, उसके ऊपर नहीं। एक पूर्ति के रूप में, जो आदम को पूर्ण बनाती है और निश्चय ही, जीवन के अनुभव से कहूँ

तो, स्वयं को भी पूर्ण बनाती है। एक बराबर की सहायक बन रही है। यह हृदय की बात बनती है, एक प्रेम-सम्बन्ध – उसकी बगल से वह जन्मी थी।

आदम और हव्वा एक ही समय पर नहीं रचे गए, क्योंकि तब परस्पर निर्भरता और एक होने और एक तन होने का वह अर्थ और वह गहराई नहीं हो सकती थी।

मैं उन क्षणों में वहाँ होना चाहता, जब परमेश्वर स्त्री को पुरुष के पास लाता है, जैसे दुल्हन को दूल्हे के पास:

> उत्पत्ति 2:23-25 और मनुष्य ने कहा: अब यह मेरी हड्डियों में की हड्डी और मेरे मांस में का मांस है; इसका नाम नारी होगा, क्योंकि यह नर में से निकाली गई है। इस कारण पुरुष अपने पिता और अपनी माता को छोड़कर अपनी पत्नी से मिला रहेगा, और वे एक तन होंगे। और मनुष्य और उसकी पत्नी दोनों नंगे थे, और लजाते न थे।

आदम इस व्यक्ति को देखकर अभिभूत है। वह पुकार उठता है: आख़िरकार मेरे जैसी एक! वह उसके बराबर है, पर उसका स्त्री-रूप, नारी (Männin)। वह इतना मोहित है कि आगे से पुरुष अपना घर छोड़ेंगे, ताकि अपनी पत्नी से मिले रहें। उलटा नहीं। यहाँ पुरुष स्त्रियों के पास आते हैं। ताकि एक तन हों। ताकि आत्मा, प्राण और देह में एक अनन्य एकता बनें। हृदयों की एक संगति। एक वैवाहिक वाचा में एक वैवाहिक संगति। सबसे अच्छे मित्र और सहेली के रूप में। एक समान मूल्य वाली साझेदारी में। एक होने की ऐसी संगति केवल दो समान मूल्य वाले और समान दर्जे वाले व्यक्तियों के बीच ही बन सकती है।

यह बात आदम पहली ही दृष्टि में पहचान लेता है। जो उसके सामने खड़ी है, वह उससे बराबरी पर, आँख से आँख मिलाकर मिलती है। शायद शरीर की ऊँचाई में नहीं, पर व्यक्ति के रूप में अपने स्वभाव में निश्चय ही। वे दूसरे को जानने के द्वारा ही स्वयं को ठीक से पहचानते हैं।

दोनों पतन से पहले एक निष्कलंक स्थिति में एक दूसरे से मिलते हैं। उनका बिना लज्जा के नंगा होना वह है जो आज इस रूप में अब नहीं रहा। यह समय कितना लम्बा चला और कितने समय तक इसका आनन्द लिया जा सका, हम नहीं जानते। मेरा अनुमान है कि यह काफ़ी लम्बा समय था।

4 सृष्टि की व्यवस्था – यदि हाँ, तो कौन-सी?

अब समय है कि सृष्टि की व्यवस्था की अवधारणा को निकट से देखें। और ठीक इसी स्थान पर: स्वर्गलोक-सी वाटिका में। वहाँ, जहाँ पाप अभी नहीं हुआ और पुरुष और स्त्री के विषय में परमेश्वर की योजना और उद्देश्य अब भी पहचाने जा सकते हैं।

बहुत-सी बहनें और भाई इस शब्द का प्रयोग ऐसे करते हैं, मानो इसका अर्थ यह हो: आदम पहले रचा गया और इसलिए अगुवाई की भूमिका में है। अधिक बड़ी ज़िम्मेदारी के साथ। हव्वा उसकी सहायक के रूप में रची गई, ताकि उसके लिए उपस्थित रहे। इससे यह निष्कर्ष निकाला जाता है कि स्त्री पुरुष के अधीन रहे। सब बातों में – जैसा कि नया नियम भी सात बार कहता है। आदम हव्वा के ऊपर सिर है।

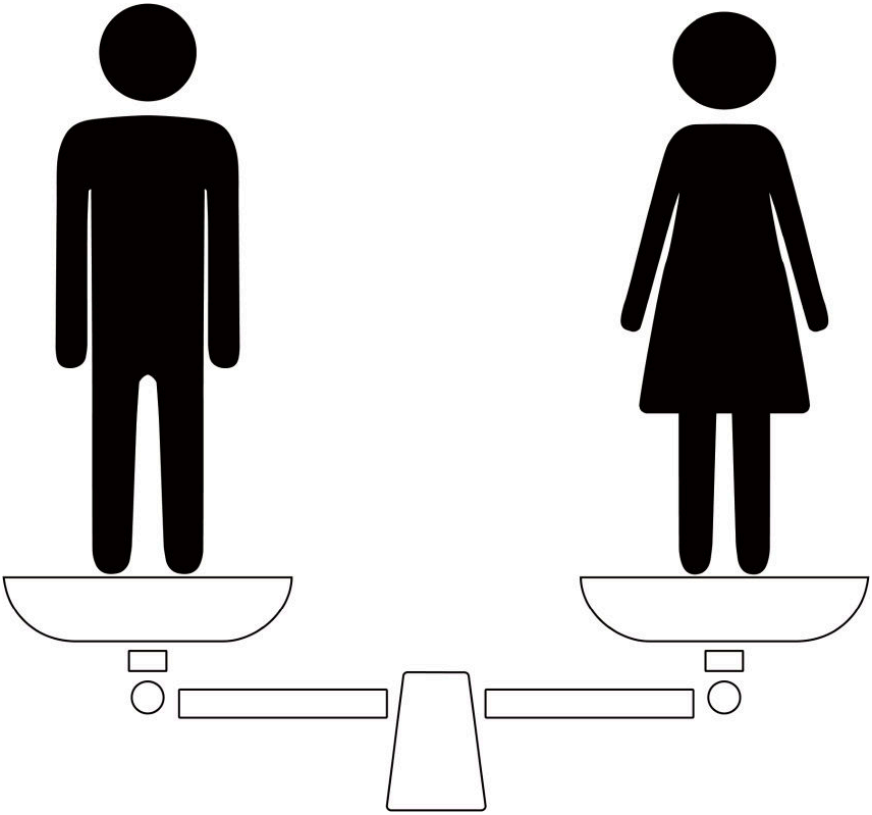
यह दृष्टिकोण बहुत फैला हुआ है। सृष्टि की घटनाओं की यह व्याख्या नए नियम के कुछ गिने-चुने कथनों से प्रेरित है, जिन्हें हम आगे देखेंगे।

हर पाठिका और हर पाठक को स्वयं इस प्रश्न का उत्तर देना चाहिए: **यदि आप केवल उत्पत्ति 1 और 2 के पाठ को देखें, तो क्या आपको वहाँ आदम की कोई परमेश्वर द्वारा चाही गई अगुवाई की भूमिका मिलती है? या हव्वा की कोई अधीनता?**

इन पाठों में न कोई पद-क्रम है, न अधीनता या अगुवाई और अधिकार। यह ठीक उसका उलटा है, जैसा मैंने ऊपर वर्णन किया है। मुझे पहचानना पड़ा कि सृष्टि की व्यवस्था के रूप में स्त्री की अधीनता है ही नहीं। अर्थात् परमेश्वर द्वारा चाहा गया कोई पद-क्रमवादी दर्जा या पद या भूमिका नहीं। **उसे इस पाठ में पढ़कर डाला जाता है।**

ठीक इसीलिए मैं सृष्टि की व्यवस्था के पक्ष में खड़ा हूँ। अर्थात् पतन से पहले वाली के पक्ष में। उसके बाद सृष्टि की **व्यवस्था** की कोई बात ही नहीं की जा सकती। पतन के दिन से वह एक **सृष्टि की अ-व्यवस्था (SchöpfungsUNordnung) है। इस अव्यवस्था** का अनुकरण हमें नहीं करना है, बल्कि सुसमाचार के प्रकाश में और उसकी सामर्थ्य में उसका विरोध करना है।

वैसे भी "सृष्टि की व्यवस्था" शब्द का प्रयोग कम से कम, यदि करना ही हो, तो किया जाना चाहिए। यह शब्द किसी ऐसी बात को पकड़कर पक्का कर देना चाहता है जो अन्ततः हमारी व्याख्या है।



5 जो आनेवाला था – पर जिसे परमेश्वर ने कभी नहीं चाहा

अब हम तथाकथित पतन के वर्णन पर एक दृष्टि डालते हैं। साँप हव्वा को बहकाता है कि वह फल ले, और वह उसे आदम को भी देती है, जो उसमें से खा लेता है। पहले से यह कह दूँ: इन दुःखद कार्यों से यह निष्कर्ष निकाला जाता है कि स्त्री अधिक आसानी से बहकाई जा सकती है, और यहाँ उसने मनमाने ढंग से पहल की और अपने पति का अनुसरण नहीं किया। यहूदियों ने, कलीसियाई पिताओं ने भी, और आज तक इसकी व्याख्या ऐसे ही या इससे मिलते-जुलते ढंग से की गई है और इसे स्त्री जाति पर लागू किया गया है।

यद्यपि मेरा ध्यान मुख्यतः पतन के सीधे परिणामों पर है, फिर भी मैं पूरा पाठ दे रहा हूँ, जो एक-एक क़दम का वर्णन करता है:

> उत्पत्ति 3:4-6 और साँप ने स्त्री से कहा: तुम निश्चय न मरोगे, वरन् परमेश्वर जानता है कि जिस दिन तुम उसमें से खाओगे, उसी दिन तुम्हारी आँखें खुल जाएँगी, और तुम परमेश्वर के समान भले और बुरे का ज्ञान रखनेवाले हो जाओगे। और स्त्री ने देखा कि वह वृक्ष खाने के लिए अच्छा, और आँखों को लुभाने-वाला, और बुद्धि देने के लिए चाहने योग्य है; और उसने उसके फल में से लेकर खाया, और अपने पति को भी, जो उसके साथ था, दिया, और उसने भी खाया।

आदम को इस वृक्ष में से न खाने की आज्ञा हव्वा के आने से पहले सीधे परमेश्वर से मिली थी (2:17)। इस-लिए हव्वा ने यह शायद केवल उसी से सुना होगा। अब बोलनेवाला साँप उसे बहकाने में सफल हो जाता है। स्पष्ट है कि आदम की उपस्थिति में, जिसे कम से कम अब तो बीच में पड़ना चाहिए था। जैसे हव्वा कमज़ोर पड़ती है और परीक्षा और बहकावे के आगे हार जाती है, वैसे ही कमज़ोर है आदम, जो बिना विरोध और बिना एक शब्द कहे हव्वा से वर्जित फल ले लेता है। दोनों ग़लत आचरण करते हैं, दोनों एक घातक भूल करते हैं और पाप करते हैं। जहाँ हव्वा बहकाई जाती है, वहाँ आदम बिना बहकावे या धोखे के, जान-बूझकर परमे-श्वर की आज्ञा के विरुद्ध पाप करता है।

तब परमेश्वर मनुष्य-जोड़े और साँप से मिलता है। सबको पता है कि क्या हुआ है। परमेश्वर हर एक से व्य-क्तिगत रूप से पूछता है कि क्या हुआ। बहुत कुछ कहनेवाले उत्तर मिलते हैं। अब परमेश्वर इस क्रम में सम्ब-न्धित लोगों से बात करता है:

> आदम – हव्वा – साँप – हव्वा – आदम।

> उत्पत्ति 3:13-15 और मनुष्य ने कहा: जिस स्त्री को तू ने मेरे संग रहने को दिया है, उसी ने उस वृक्ष में से मुझे दिया, और मैं ने खाया। और यहोवा परमेश्वर ने स्त्री से कहा: तू ने यह क्या किया है! और स्त्री ने कहा: साँप ने मुझे धोखा दिया, और मैं ने खाया। और यहोवा परमेश्वर ने साँप से कहा: तू ने जो यह किया है, इसलिए तू सब घरेलू पशुओं और सब मैदानी पशुओं से अधिक शापित है! तू पेट के बल चला करेगा और जीवन भर मिट्टी चाटता रहेगा। और मैं तेरे और इस स्त्री के बीच में, और तेरे वंश और इसके वंश के बीच में बैर उत्पन्न करूँगा; वह तेरे सिर को कुचल डालेगा, और तू उसकी एड़ी को कुचल डालेगा।

आदम को अपने दोष का पता है। शायद पूरी तरह नहीं, क्योंकि वह तुरन्त उसे हव्वा पर डाल देता है। यह दयनीय और कायरता की बात है कि वह अपनी पत्नी को इस तरह ज़िम्मेदार ठहराए, ताकि स्वयं बच निकले।[1] और परोक्ष रूप से परमेश्वर पर भी दोष लगाया जाता है, जिसने उसे वह स्त्री दी थी, जिससे वह तो इतना प्रसन्न था। **उसने, न कि उसने (हव्वा ने), आज्ञा को सीधे पहले हाथ से जाना था, और उसे हव्वा से दृढ़ता से "नहीं" कहना चाहिए था।**

हव्वा अपना अपराध मान लेती है। वह न आदम पर दोष लगाती है, जिसने उसे नहीं रोका, न परमेश्वर पर, बल्कि साँप पर। उससे वह अपने को अलग कर लेती है। उस घातक स्थिति में यही एकमात्र ठीक बात थी। अब वह झकझोरकर जगाई जा चुकी थी और इस शत्रु के विरुद्ध खड़ी हो जाती है। आदम के विपरीत, जो इस वार्तालाप में अपनी पत्नी के पक्ष में खड़ा नहीं होता।

इस धोखे के कारण साँप सदा के लिए शापित रहेगा और भूमि तक नीचा किया जाएगा। हव्वा बुराई के कारण का नाम साफ़ लेती है, और एक महान प्रतिज्ञा मिलती है, जिसकी पहुँच उस समय अभी पहचानी नहीं जा सकती थी। उसका वंश – आप ठीक पढ़ रहे हैं – स्त्री का वंश, किसी पुरुष का नहीं, साँप के सिर को कुचल डालेगा।

अब हव्वा के लिए और फिर आदम के लिए भी परिणाम बताए जाते हैं। मैं ज़्यूरिख़ बाइबल (Zürcher Bibel, जर्मन बाइबल अनुवाद) से अनूदित करके उद्धृत करता हूँ, जो यहाँ एल्बरफेल्डर से अधिक स्पष्ट है:

> उत्पत्ति 3:16 स्त्री से उसने कहा: मैं तुझे बहुत कष्ट दूँगा और तेरे गर्भ बहुत करूँगा, पीड़ा के साथ तू बच्चे जनेगी।
>
> तेरी लालसा तेरे पति की ओर होगी, और वह तुझ पर प्रभुता करेगा।

जहाँ साँप शापित होता है, वहाँ **अपराध के बावजूद स्त्री पर कोई शाप नहीं पड़ता**। भावार्थ में इन दण्ड-वचनों का अर्थ यह है:

> मैं निश्चय ही बढ़ाऊँगा (1) खेत पर तेरे कठिन परिश्रम को और (2) तेरे गर्भधारण को।
>
> परिश्रम के साथ तू बच्चे जनेगी।
>
> तेरी [प्रेम भरी] लालसा तेरे पति की ओर [होगी]। पर वह [विद्रोह करके स्वयं पर प्रभुता करता है और] तुझ पर प्रभुता करना चाहेगा।

कष्ट और परिश्रम खेती का काम है। उसमें हव्वा शापित भूमि के कारण आदम के साथ दुःख उठाती है। शाप दोनों में से किसी एक पर या दोनों पर मिलकर नहीं पड़ता, बल्कि भूमि पर। उसके कारण दोनों दुःख उठाएँगे।

परन्तु आशा है। क्योंकि परमेश्वर हव्वा के गर्भ बढ़ाएगा। इसलिए निश्चय ही वह वंश होगा, जो साँप को मार डालेगा। आरम्भ में ही अनुग्रह चमक उठता है, और वह स्त्री ही है, जो बहकाई जाने के बावजूद केन्द्र में खड़ी है और जिसे आशा का वचन मिलता है। आदम को नहीं।

1. ऐसा लगता है कि आदम हव्वा को अपने अधीन व्यक्ति नहीं मानता था, क्योंकि किसी अधीन व्यक्ति से वह शायद इस तरह चकमा न खाता।

परमेश्वर स्त्री के शरीर की बनावट नहीं बदलता, कि दण्ड के रूप में उसे प्रसव में और अधिक पीड़ा हो। अब तक उसने कोई बच्चा जना ही नहीं है। परिश्रम का सम्बन्ध प्रसव-पीड़ा से नहीं, बल्कि खेती से है।

अब हम उस भाग पर आते हैं, जिसमें उसके पति के साथ उसके सम्बन्ध की बात है। यह कोई प्रतिज्ञा नहीं, बल्कि एक दुःखद वचन है। यह अनगिनत स्त्रियों के लिए दुःख और दमन के एक ऐसे इतिहास की घंटी बजाता है, जिस पर पुरुषों को लज्जित होना चाहिए। **यह परमेश्वर की इच्छा नहीं कि पुरुष स्त्री पर प्रभुता करे, यह पुरुष की पापी और पतित इच्छा है। यही इस वचन का सच्चा अर्थ है।** यह किसी पालन करने योग्य सृष्टि की व्यवस्था का वर्णन नहीं करता। यह एक अव्यवस्था का वर्णन करता है। क्योंकि उत्पत्ति 1 और 2 की अच्छी व्यवस्था यहाँ अपनी जगह से हिल गई है और टूट गई है।

जो कोई इस बाइबल-वचन को स्त्री की अधीनता का आधार बनाता है, वह साँप के पक्ष में खड़ा होता है। साँप से पहले ही कह दिया गया था कि हव्वा और साँप के बीच बैर होगा। साँप आक्रमणकारी था, जिसने पुरुष की प्रभुता का उपयोग किया और अब भी करता है, ताकि जहाँ और जैसे भी सम्भव हो, स्त्री के साथ भेदभाव किया जाए। क्योंकि स्त्री से ही तो साँप पर विजय पानेवाला आनेवाला था। इसलिए स्त्री पर आक्रमण करना और उसे कमज़ोर करना आवश्यक था।

पुरुष और स्त्री मिलकर प्रभुता करने के लिए बुलाए गए थे। पर पुरुष प्रभुता को अपने हाथ में छीन लेगा और स्त्री को कमज़ोर लिंग मानकर अपने वश में करेगा और अपनी सेवा में लगाएगा। पितृसत्ता शब्द सामान्य रूप से अच्छी तरह बताता है कि अदन के बाहर स्त्री का दुःखद भाग्य क्या रहा। कुछ अपवादों को छोड़कर।

परस्पर सहारे और बल का, समानता का, बराबरों के बीच मान्यता का, और सामने खड़े साथी को सबसे निकट का संगी मानने का मूल सम्बन्ध एक भयानक रूप से अव्यवस्थित, भावनात्मक रूप से असमान, शक्ति पर आधारित, अकसर प्रेमहीन सम्बन्ध बन गया है। स्त्री में अपने पति के लिए और उसके स्नेह, उसके भरोसे और उसकी सुरक्षा के लिए लालसा होगी, पर वह उस पर हावी होगा। यह एक भयावह टूटन और उलट-पुलट है।

यह लिंगों का संघर्ष आगे सब जातियों की संस्कृतियों के हर स्तर पर दिखाई देगा। इसे केवल तभी चंगा किया जा सकता है, जब इसे उत्पन्न करनेवाली बुराई को जड़ से पकड़ा जाए।

अन्त में आदम से कहे गए दण्ड-वचनों पर एक दृष्टि, जो सचमुच अन्धकारमय हैं और अन्ततः उस स्त्री पर भी लागू होते हैं, जो अपना जीवन और जीवन-संघर्ष उसके साथ बाँटती है:

> उत्पत्ति 3:17-19 और आदम से उसने कहा: तू ने जो अपनी पत्नी की बात सुनी, और जिस वृक्ष के विषय मैं ने तुझे आज्ञा दी थी और कहा था कि तू उसका फल न खाना, उसको तू ने खाया है – इसलिए भूमि तेरे कारण शापित है: तू उसकी उपज जीवन भर दुःख के साथ खाया करेगा; और वह तेरे लिए काँटे और ऊँटकटारे उगाएगी, और तू खेत की उपज खाएगा।
>
> अपने माथे के पसीने की रोटी तू खाया करेगा, जब तक तू मिट्टी में न मिल जाए, क्योंकि तू उसी में से निकाला गया है। क्योंकि तू मिट्टी है, और मिट्टी ही में फिर मिल जाएगा!

भूमि हव्वा के कारण नहीं, बल्कि आदम के कारण शापित है। उसका पाप अधिक बड़ा प्रतीत होता है। हव्वा तो अधिकतर एक पीड़ित थी, और वह अपराधी। स्त्री का वंश, अर्थात् उस स्त्री का एक वंशज, जो उसे सहायक के रूप में दी गई थी, आगे के भविष्य में भी उसके लिए वही होगा: उसका वंश (यीशु मसीह) पुनरुत्थान में उसे मिट्टी में से खींचकर जीवन में ले आएगा। एक दिन हम आदम से भी बात कर सकेंगे – यदि तब वह इस विषय में बात करना चाहे भी।

पतन के वृत्तान्त में, न कि सृष्टि के वृत्तान्तों में, एक लिंग की दूसरे पर श्रेष्ठता का पहली बार उल्लेख होता है। और यहाँ बात किसी भीतरी, स्वाभाविक श्रेष्ठता की नहीं, बल्कि ऐसी श्रेष्ठता की है जो शक्ति, बल और हिंसा के द्वारा बिना अधिकार के, परमेश्वर की सृष्टि की व्यवस्था के विरुद्ध चलाई जाती है। सृष्टिकर्ता के हव्वा से कहे गए वचन: "तेरी लालसा तेरे पति की ओर होगी, और वह तुझ पर प्रभुता करेगा" (उत्पत्ति 3:16), का अर्थ है कि हमारी पापी मानवीय दशा में पुरुष अपने लिए स्त्री की स्वाभाविक लालसा का उपयोग उस पर प्रभुता करने और उसे अपने वश में करने के लिए करता है। स्त्री को वश में किया जाना सचमुच पुरुष के पतित स्वभाव का एक लक्षण है। यदि मसीह के जीवन और कार्य का अर्थ पतन के परिणामों पर विजय है, तो इस टूटे हुए सम्बन्ध पर, और स्त्री को वश में करने और उसके शोषण पर इसका प्रभाव स्पष्ट है: वह उसे स्वतन्त्र करेगा और बाहर निकाल लाएगा। और ऐसा ही होना था।

Hans-Jörg Ronsdorf 10.4.2021

6 यीशु, मसीह, और स्त्रियाँ

प्रभु यीशु मसीह का उद्धार का कार्य ही पहली बार पतन के परिणामों पर विजय नहीं पाता। 2000 वर्ष पहले यहूदी और यूनानी-रोमी वातावरण में जिस ढंग से वह स्त्रियों के साथ व्यवहार करता है और उनसे मिलता है, वह सचमुच स्त्रियों के लिए एक नए युग का आरम्भ है। ऐसा पुरुष पहले कभी नहीं हुआ था। ऐसा लग सकता है मानो परमेश्वर एक पुरुष के रूप में देह में आया, ताकि पुरुष जाति को दिखाए कि स्त्रियों के साथ कैसा व्यवहार किया जाता है।

वह ऐसा भविष्यद्वक्ता था, जो बिना कुड़कुड़ाए डाँटता था और बिना नीचा दिखाए सराहता था। वह उनके प्रश्नों, संकटों और तर्कों को गम्भीरता से लेता था। वह बिलकुल सहज होकर उनके साथ व्यवहार करता था और कभी उनके स्त्रीत्व का उपहास नहीं करता था। उस समय की संस्कृति से बिलकुल अलग, जहाँ लोग परमेश्वर का धन्यवाद करते थे कि वे स्त्री होकर नहीं जन्मे। जब स्त्री एक सम्पत्ति थी, जिससे छोटी-छोटी बातों पर त्यागपत्र देकर छुटकारा पाया जा सकता था। स्त्रियों का, और बच्चों का भी, भाग्य कठिन था, जिसकी कल्पना हम अपने पश्चिमी संसार में मुक्ति और समान अधिकारों के इस युग में नहीं कर सकते। मसीहा ने हव्वा की बेटियों की सुधि ली। **उसके यहाँ स्त्री की किसी पद-क्रमवादी अधीनता का कोई संकेत नहीं मिलता, और न ही कलीसिया में, विवाह में या समाज में बोलने, अगुवाई करने या शिक्षा देने पर किसी रोक का।**

एक स्त्री ने जीवन के वचन को संसार में जन्म दिया। बहुत-सी स्त्रियाँ बारहों की तरह उसके पीछे चलीं और उसकी सेवा करती रहीं। वे उसके सबसे कठिन मार्ग पर क्रूस तक उसके पीछे चलीं। वे क्रूस के पास थीं, जब चेले कब के भाग चुके थे। जी उठा हुआ सबसे पहले एक स्त्री को दिखाई देता है। ख़ाली क़ब्र पर स्त्रियाँ पुनरुत्थान की गवाह बनती हैं। उन संस्कृतियों में स्त्रियों को क़ानूनी अर्थ में गवाह होने के योग्य नहीं समझा जाता था। यीशु इस भेदभाव को बस समाप्त कर देता है।

स्थान की कमी के कारण, जिन बहुत-सी स्त्रियों से यीशु मिला, उनमें से हम केवल तीन को देखेंगे, ताकि ऊपर कही गई बात को यीशु के जीवन में फिर से पाएँ।

6.1 याकूब के कुएँ पर सामरी स्त्री

यूहन्ना 4 पढ़िए और इस कहानी में डूब जाइए। दोपहर की गर्मी में, जब कोई पानी भरने नहीं आता, केवल तभी वह कुएँ पर आने का साहस करती है। और वहाँ यीशु इस स्त्री की प्रतीक्षा कर रहा है। उससे मिलने के लिए उसने एक लम्बा चक्कर लगाया है। पाँच पुरुषों ने उसे छोड़ दिया था, एक हाथ से दूसरे हाथ में दी गई और इस्तेमाल करके फेंक दी गई। जीवित रहने के लिए उसे अपने को छठे के हाथ सौंपना पड़ा और अपनी नष्ट हो चुकी साख के साथ जीना पड़ा। उस समय कोई पुरुष सबके सामने किसी स्त्री से बात नहीं करता था,

और कोई यहूदी किसी सामरी स्त्री से तो बिलकुल नहीं। पर यीशु ने ऐसा किया! वह इस स्त्री पर अपने को मसीहा के रूप में प्रकट करता है। ऐसा उसने पहले कभी नहीं किया था। वह उससे जीवन के जल और आराधना के विषय में इतनी देर तक बात करता है, जितनी किसी और से किसी धर्मवैज्ञानिक विषय पर नहीं की। वह समय निकालता है। वह उसका हृदय जीत लेता है। वह उसके लिए, नासरत के उस पुरुष के लिए, सूखार के उस पुरुष के लिए, मूल्यवान थी।

परमेश्वर से इस भेंट के बाद हर डर और हर लज्जा से मुक्त होकर वह अपने पूरे गाँव में सुसमाचार सुनाती है। बहुत-से लोग विश्वास करते हैं। यीशु और चेले दो दिन और ठहरते हैं।

बाद में सामरिया के ये विश्वासी घरेलू कलीसियाओं में इकट्ठे होंगे। और वह, वही स्त्री, निश्चय ही इन सभाओं में उसके विषय में, सूखार के उस पुरुष के विषय में, अपने मसीहा और उसके साथ अपनी अनोखी भेंट के विषय में बोलेगी। उसने आराधना के विषय में उससे जो कहा था, वह उसे आगे बताएगी। क्योंकि इकट्ठी हुई कलीसिया ही वह स्थान है, जहाँ पिता की आराधना होती है। यह स्त्री भी निश्चय ही आराधना करने के लिए कलीसिया में अपनी आवाज़ उठाएगी। नहीं तो उसने आराधना को ठीक उसी को, एक स्त्री को, क्यों समझाया होता?

केवल यही कहानी चुप रहने की आज्ञा को बेतुका सिद्ध कर देती है।

6.2 यीशु के चरणों में – मार्था और मरियम

वह कहानी (लूका 10:38-42) काफ़ी प्रसिद्ध है, जिसमें मार्था यीशु से शिकायत करती है कि उसकी बहन मरियम उसकी सहायता नहीं करती, जब वह यीशु और उसके चेलों के लिए भोजन तैयार कर रही है। वह चेलों के साथ यीशु के चरणों में बैठकर उससे सीखना अधिक पसन्द करती है। यीशु मरियम का पक्ष लेता है और कहता है कि यह आवश्यक भी है और उसने वह उत्तम भाग चुन लिया है, जो उससे छीना न जाएगा। इसका क्या अर्थ है? परमेश्वर के राज्य में स्त्रियाँ भी पुरुषों की तरह सीखें। रब्बियों की पाठशालाओं में लगभग कोई स्त्री नहीं होती थी। यीशु अलग करता है। पुरुष और स्त्री सीखने में बराबर सक्षम हैं और सिखाने में भी बराबर सक्षम हैं। यहाँ भी यीशु अपने समय की एक परम्परा तोड़ता है, जो हमारे यहाँ कब की समाप्त हो चुकी है। पौलुस बाद में तीमुथियुस को लिखता है (2 तीमुथियुस 2:2) कि जो कुछ उसने बहुत-से गवाहों के सामने सुना है, वह उसे मनुष्यों – स्त्रियों और पुरुषों – को सौंपे, जो दूसरों को सिखाने के योग्य होंगे। यह इसी स्थिति को ठीक-ठीक प्रकट करता है: यीशु अपनी शिक्षाएँ ऐसे मनुष्यों, शिष्याओं और शिष्यों को सौंपता है, जो इसके द्वारा बाद में दूसरों को सिखाने के योग्य बनते हैं। **स्पष्ट है कि यह स्त्रियों के लिए शिक्षा देने पर किसी सामान्य रोक का खण्डन करता है।**

यीशु के साथ सम्बन्ध में लिंग की अब कोई भूमिका नहीं रहती। वह किसी का मुँह देखकर बात नहीं करता था (मत्ती 22:16)। इसका अर्थ यह नहीं कि लिंगों को मिटा दिया गया है, बल्कि यह कि यीशु दोनों को समान

रूप से और बिना भेद के आदर देता है: **जो कोई परमेश्वर की इच्छा पर चले, वही मेरा भाई और मेरी बहन है!** (मरकुस 3:33-35)

6.3 मरियम मगदलीनी, प्रेरितों की प्रेरिता

तीसरी शताब्दी में रोम के कलीसियाई पिता हिप्पोलिटस (Hippolyt von Rom) मरियम मगदलीनी को यही नाम देते हैं। क्यों? वह पहली थी, जिससे यीशु अपने पुनरुत्थान के बाद मिला। शायद वह उससे सब दूसरों से अधिक प्रेम करती थी। यीशु ने उसे दुष्टात्माओं के वश में होने की दासता और दुर्दशा से छुड़ाया था। तब से वह दूसरी स्त्रियों के साथ उसके पीछे चल रही थी, जिन्हें उसने चंगा किया था (लूका 8:2-3)। वह उसका हृदय जानता था। और केवल उसे, एक स्त्री को, बारी में यह अनोखा क्षण अनुभव करना था। और स्पष्ट है कि केवल उसी को यह सौभाग्य मिलना था कि वह यीशु से ऐसे शब्द सुने, जो मनुष्यों की सुनी हुई हर बात से बढ़कर हैं:

> परन्तु मेरे भाइयों के पास जाकर उनसे कह दे: मैं अपने पिता और तुम्हारे पिता, और अपने परमेश्वर और तुम्हारे परमेश्वर के पास ऊपर जाता हूँ (यूहन्ना 20:17)।

इस प्रकार वह चेलों के लिए भेजी गई दूत, प्रेरिता बन जाती है। एक सम्मान की उपाधि, जो उस पर ठीक बैठती है, चाहे वह औपचारिक न हो। यह सन्देश किसी पुरुष को, बारहों में से किसी को नहीं सौंपा जाता। यह एक स्त्री को, एक विश्वासयोग्य गवाह के रूप में सौंपा जाता है। **क्या उसने सभाओं में भी बार-बार इस भेंट के विषय में नहीं बताया होगा?**

7 दुल्हन-कलीसिया और स्त्रियों की सेवा

सब विश्वासी, यीशु को माननेवाले सब लोग, पुरुष और स्त्रियाँ समान रूप से, मिलकर मेम्ने की दुल्हन हैं।

सृष्टि के वृत्तान्त में साफ़ दिखता है कि कैसे परमेश्वर की इच्छा के अनुसार आदम और हव्वा एक दूसरे पर प्रभुता नहीं करते, बल्कि साथ मिलकर और साथ-साथ परमेश्वर का सृष्टि-सम्बन्धी कार्य पूरा करते हैं। किसी को दूसरे पर कोई विशेषाधिकार नहीं, और किसी लिंग पर कोई सीमा भी नहीं। परमेश्वर की योजना के अनुसार विवाह ऐसा ही दिखता है, और मूल रूप से जीवन के हर क्षेत्र में दोनों लिंगों का आपसी व्यवहार ऐसा ही दिखता है।

पतन ने इस चित्र को स्थायी रूप से तोड़ दिया: सन्तुलन नष्ट हो गया है, पुरुष अब – अपवादों को छोड़कर, स्वाभाविक है – स्त्री पर प्रभुता करना चाहता है। केवल पाप के द्वारा ही स्त्री अधीन की जाती है। हाँ, वश में की जाती है और पीछे धकेल दी जाती है। सार्वजनिक जीवन पुरुष के लिए सुरक्षित रखा जाता है। स्त्री अपनी ओर से अपनी स्थिति का सबसे अच्छा उपयोग करने के लिए अपने उपाय निकालेगी।

पर कलीसिया में कैसा है, परमेश्वर के राज्य में कैसा? क्या वहाँ असमानता और तनाव और एकतरफ़ा अधीनता का यह पापी ढाँचा चलता रहे? पौलुस और पतरस की पत्रियों में ऐसे वचन हैं, जिन्हें ऐसे समझा जा सकता है, यदि कोई उन्हें ऐसे समझना चाहे। पर पहले हम पौलुस पर एक दृष्टि डालें।

7.1 पौलुस और उसकी सहकर्मिणियाँ

दो, शायद तीन बाइबल-पाठ, यदि उन्हें ऊपर-ऊपर से समझा जाए, पौलुस को **स्त्रियों का शत्रु** दिखाते हैं। यदि ध्यान से देखा जाए, तो बात अधिकतर इसके उलटी है। यीशु की तरह, जो उसका परम आदर्श है, वह स्त्रियों के साथ क्रान्तिकारी व्यवहार करता है, अर्थात् पुरुषों के समान अधिकारों के साथ। वह **स्त्रियों का मित्र** था। वह सचमुच कोई भेद नहीं करता। जिस सहजता से वह प्रभु में बहनों के विषय में लिखता है, वह ध्यान खींचती है। अथक प्रेरित और मिशनरी पौलुस का काम बहुत-सी स्त्रियों से घिरा और उनसे जुड़ा हुआ था। वे उसके मिशन में सम्मिलित थीं और एक ज़ंजीर की कड़ियों की तरह अनिवार्य सहकर्मी थीं। स्त्रियाँ दूसरी पंक्ति की सहायिकाएँ भर नहीं थीं, वे अपनी विश्वासयोग्यता के लिए जानी जाती थीं और पौलुस की तरह वचन की सेवा करती थीं। हम ऐसी बहुत-सी स्त्रियों के नाम गिना सकते हैं, मैं तीन तक सीमित रहूँगा। रोमियों 16 में 29 व्यक्तियों के नाम हैं, जिनमें से कम से कम 10 स्त्रियाँ हैं, जिनकी सेवा और परिश्रम की पौलुस सराहना करता है, पुरुषों से भी अधिक। वहीं से हम आरम्भ करते हैं।

7.1.1 फीबे – सेविका (डीकन), अगुवा और पत्र-वाहिका

रोमियों 16 में नमस्कार की सूची फीबे से आरम्भ होती है। अच्छे कारण से। वही है, जिसके पास पौलुस की शायद सबसे महत्वपूर्ण पत्री को रोम ले जाने का भरोसा और साधन है। प्रथा यह थी कि पत्र-वाहक पत्र को केवल पढ़कर सुनाता ही नहीं था, बल्कि उसके विषय में प्रश्नों के उत्तर भी देता था। पौलुस ने स्वयं उसे सिखाया था और इस पत्री में, जिसे उसने कुरिन्थुस में लिखा, उसका परिचय कराया था; इसलिए फीबे यह कार्य पूरा करने के योग्य थी। वह रोम की अलग-अलग घरेलू कलीसियाओं में गई, ताकि पत्री को पढ़कर सुनाए और जहाँ प्रश्न उठें, वहाँ उसे समझाए।

वह स्वयं कुरिन्थुस के पूर्वी बन्दरगाह किंख्रिया की घरेलू कलीसिया में सेवा करनेवाली, एक सेविका (डीकन) थी। इससे भी बढ़कर, वह शायद इस कलीसिया की अगुवा थी। जर्मन अनुवादों के अनुसार पौलुस उसे एक सहारा, सहायता या आधार कहता है। पर इसका वास्तविक अर्थ है प्रधान, अगुवाई करनेवाली (यूनानी: prostatis) और यह किसी अगुवाई के पद की ओर संकेत करता है, उदाहरण के लिए इस घरेलू कलीसिया में। इसकी कल्पना कठिन है कि पौलुस फीबे को यह कार्य सौंपता है, जिसका किंख्रिया की घरेलू कलीसिया में एक ज़िम्मेदारी का पद है, पर साथ ही वह स्त्रियों को सामान्य रूप से कलीसिया में बोलने, शिक्षा देने और अगुवाई करने से रोकता है।

दूसरी ओर हम इन पदों में बहुत अधिक पढ़कर डालना भी नहीं चाहते, पर उनकी ऐसी व्याख्या करना भी अच्छा नहीं, मानो उसने केवल एक साधारण डाकिए का काम किया हो।

7.1.2 एक आदर्श दम्पति: प्रिस्का और अक्विला

सबसे अधिक बार उल्लिखित दम्पति प्रिस्का और अक्विला (Aquila) शायद अपने मिशन-कार्य में पौलुस के सबसे लम्बे समय तक साथ रहनेवाले और सबसे भरोसेमंद सहकर्मी हैं। यद्यपि दम्पतियों में हमेशा पति का नाम पहले लिया जाता था, फिर भी नया नियम पत्नी प्रिस्का का नाम चार बार (छह उल्लेखों में से) पहले लेता है। क्यों? क्योंकि सेवा में वह आगे रहती थी और अगुवाई करती थी। शायद इसलिए कि वह अपने पति से अधिक वरदान-सम्पन्न थी। और फिर भी दोनों टीम के साथियों के रूप में समान मूल्य और समान दर्जे के साथ एकता में मिलकर काम करते थे। हर एक दूसरे की शक्तियों और कमज़ोरियों को जानता था। स्त्री होने के कारण प्रिस्का रणनीति की दृष्टि से भी महत्वपूर्ण थी, क्योंकि स्त्रियों तक सुसमाचार अधिकतर स्त्रियों के द्वारा पहुँचता था, पुरुषों के द्वारा नहीं। दोनों ने, प्रिस्का आगे रहकर, अपुल्लोस को सिखाया (प्रेरितों के काम 18:26)। स्वयं पौलुस से सीखकर, मिलकर तम्बू बनाने के बहुत-से घंटों में प्रश्नों और उत्तरों के द्वारा प्रशिक्षित होकर, दोनों दूसरों को सिखाने के लिए तैयार थे।

यहाँ प्रिस्का का, एक स्त्री का, विशेष उल्लेख करना है। उसका पति दूसरी पंक्ति में, सहारा देते हुए उसके पीछे खड़ा था, पर इससे कोई पद-क्रम नहीं बन सकता था। यह कल्पना नहीं की जा सकती कि पौलुस स्त्रियों

के लिए शिक्षा देने पर कोई सामान्य रोक लगाता, जबकि वह ठीक अपुल्लोस को और निश्चय ही बहुत-से दूसरों को भी सिखा रही थी। यह जोड़ा सब दम्पतियों के लिए एक आदर्श है।

7.1.3 यूनिया – प्रतिष्ठित प्रेरिता

पौलुस एक और मिशनरी दम्पति को सम्मान देता है: अन्द्रुनीकुस और यूनिया। दोनों को प्रेरित कहा गया है (रोमियों 16:7)। नए नियम के सबसे आरम्भिक व्याख्याकार, कलीसियाई पिता, यूनिया के विषय में बड़े आदर से बोलते हैं। यूहन्ना क्रिसोस्तोम (Johannes Chrysostomos) (344-407 ई.) यूनिया के विषय में लिखते हैं: "प्रेरित होना एक बड़ी बात है। पर प्रेरितों में प्रसिद्ध होना – सोचिए, यह कितनी बड़ी प्रशंसा है। इस स्त्री की बुद्धि कितनी बड़ी रही होगी कि वह प्रेरित की उपाधि के योग्य समझी गई।"

पुरुषों के प्रभुत्व वाले कलीसियाई संसार को यह स्वीकार करना कठिन लगता है कि प्रेरित पौलुस एक स्त्री को प्रेरिता कहता है। इसलिए ऐसे अनुवाद हैं, जो यूनिया को यूनियास (Junias) बना देते हैं, अर्थात् एक पुरुष का नाम। जो होना नहीं चाहिए, वह हो भी नहीं सकता। पर शोध ने अब बार-बार पुष्टि की है कि यह एक स्त्री का नाम है।

दोनों किस अर्थ में प्रेरित थे, यह खुला रह जाता है। शायद उन्हें किसी कलीसिया ने भेजा था। शायद वे कलीसियाएँ स्थापित करने की प्रेरितीय सेवा करते थे। या वे इस अर्थ में प्रेरित थे कि वे उन लोगों में थे, जिन्होंने जी उठे हुए को देखा था और अब फ़िलिस्तीन के बाहर परमेश्वर के राज्य के लिए काम कर रहे थे।

यहाँ भी मैं अपनी बात दोहराता हूँ: **किसी प्रेरिता के लिए स्त्रियों पर बोलने, शिक्षा देने और अगुवाई करने की रोक का पालन करना कठिन ही होगा।** यह बात कि दोनों कुछ समय पौलुस के साथ बन्दीगृह में थे, यह निष्कर्ष निकालने देती है कि दोनों ने, शायद सार्वजनिक रूप से भी, सुसमाचार का प्रचार किया था।

8 क्या बहनों के लिए चुप रहने की कोई आज्ञा है?

जब कोई इन तीन स्त्रियों को, और पौलुस के आसपास की दूसरी स्त्रियों को भी देखता है, तो उसके मन में यह विचार नहीं आएगा कि इकट्ठी हुई घरेलू कलीसिया में, अर्थात् जिसे हम आज आराधना-सभा कहते हैं, स्त्रियों को चुप रहना चाहिए। नए नियम में और कहीं भी इसका कोई संकेत नहीं कि ऐसा होना चाहिए था या ऐसा किया जाता था। **हमें यह विचार तक नहीं आता कि ऐसी कोई बात हो सकती है।**

केवल एक छोटे-से पाठ-अंश को छोड़कर, जिसे ऐसे समझना ही पड़ता है। बात 1 कुरिन्थियों 14:34-35 के इस पाठ की है:

> स्त्रियाँ सभाओं में चुप रहें, क्योंकि उन्हें बातें करने की आज्ञा नहीं, परन्तु अधीन रहने की, जैसा व्यवस्था भी कहती है।
>
> और यदि वे कुछ सीखना चाहें, तो घर में अपने-अपने पति से पूछें; क्योंकि स्त्री का सभा में बातें करना लज्जा की बात है।

इसे प्रभु की एक सीधी और स्पष्ट आज्ञा समझा जा सकता है। पर इस पर ठोस कारणों से सन्देह है। किसी मुक्तिवादी या नारीवादी सोच के कारण नहीं, बल्कि स्वयं पवित्रशास्त्र के आधार पर।

अध्याय 11:5 में पौलुस उन स्त्रियों की बात करता है, जो प्रार्थना करती और भविष्यद्वाणी करती हैं (योएल 2:28 और प्रेरितों के काम 2:17 के अनुसार)। वे यह कहाँ करती हैं? कुछ कहते हैं, सभा में; दूसरे कहते हैं, केवल सभा के बाहर, जैसा अध्याय 14 के ये पद 34-35 पुष्टि करते-से लगते हैं। पर पौलुस के यहाँ प्रार्थना और भविष्यद्वाणी **मुख्य रूप से** इकट्ठे होने पर होती है। वह 14वें अध्याय में इसका ऐसा ही वर्णन करता है। वहाँ पौलुस के लिए यह स्वाभाविक बात है कि स्त्रियाँ भाग लेती हैं। वह कई बार ऐसे शब्दों का प्रयोग करता है।

- पद 5: मैं चाहता हूँ कि तुम सब अन्य भाषाओं में बोलो, पर इससे बढ़कर यह कि तुम भविष्यद्वाणी करो!
- पद 12: ऐसा प्रयत्न करो कि तुम (सब) सभा की उन्नति के लिए बढ़ते जाओ।
- पद 23: तो यदि सारी सभा एक जगह इकट्ठी हो, और सब के सब अन्य भाषाएँ बोलें ...
- पद 26: तो हे भाइयो, क्या करना चाहिए? जब तुम इकट्ठे होते हो, तो तुम में से हर एक के पास भजन, या शिक्षा, या प्रकाशन, या अन्य भाषा, या अनुवाद रहता है; सब कुछ उन्नति के लिए हो।

भाइयों (यूनानी: adelphoi) से भाई-बहन, अर्थात् भाई **और** बहनें अभिप्रेत हैं, जैसा बहुत-से दूसरे पदों में भी, जिन्हें हम केवल पुरुषों तक सीमित नहीं कर सकते (1 कुरिन्थियों में यह शब्द 27 बार आता है और लगभग हमेशा भाई **और** बहनें अभिप्रेत हैं)।

- पद 31: क्योंकि तुम सब एक-एक करके भविष्यद्वाणी कर सकते हो, ताकि सब सीखें और सब शान्ति पाएँ।

हर उस मसीही के लिए, जिसके लिए बाइबल परमेश्वर का वचन है, बाइबल के पाठ के भीतर विरोधाभास असम्भव हैं। पर पद 34-35 अधिकतर पाठकों को पाठ में किसी बाहरी वस्तु की तरह लगते हैं। इसका पहले तो बाइबल की आलोचना या किसी ग़लत मनोवृत्ति से कोई सम्बन्ध नहीं, बल्कि उस सामान्य बुद्धि से, जो यहाँ ठीक ही एक विरोधाभास देखती है।

हम इस विरोधाभास को कैसे सुलझा सकते हैं? इन पदों को देखते हुए, जहाँ स्त्रियाँ प्रार्थना और भविष्यद्वाणी करती हैं और सबको इसके लिए प्रोत्साहित भी किया जाता है, और पौलुस के यहाँ स्त्रियों की सेवाओं के वर्णन को देखते हुए भी, यह असम्भव है कि यहाँ चुप रहने की कोई सार्वभौमिक और सर्वकालिक आज्ञा अभिप्रेत हो। दूसरे शब्दों में: इस पाठ की कोई दूसरी व्याख्या आवश्यक है, जो विश्वसनीय अर्थ दे, न कि विरोधाभासी। बहुत-सी व्याख्याएँ हैं, या कहें, समझाने के प्रयास, क्योंकि अधिकतर व्याख्याकारों ने इस विरोधाभास को पहचाना है। मैं यहाँ कुछ थोड़ी-सी का उल्लेख करता हूँ, ताकि फिर एक दूसरा समाधान प्रस्तुत करूँ।

8.1 भविष्यद्वाणियों को परखना

यदि कुरिन्थुस में स्त्रियों को घर पर अपने पतियों से पूछना था, तो इसका अर्थ है कि उनके पास प्रश्न थे और शायद उन्हें अच्छी शिक्षा नहीं मिली थी। उनमें ज्ञान की कमी थी। इसलिए या तो वे कलीसिया की सभाओं में बार-बार बीच में प्रश्न पूछती थीं, या ऐसी बातें कहती थीं जो बुद्धिमानी की नहीं थीं, और वह भी ऐसे ढंग से जो उसका उलटा था जिसे पौलुस यहाँ अधीन रहना कहता है। इससे वे व्यवधान डालती थीं और अव्यवस्था उत्पन्न होती थी, जो शान्ति के परमेश्वर के अनुरूप नहीं। तो बात यह नहीं होती कि वे कुछ कहती हैं या नहीं, बल्कि यह कि वे कैसे और क्या कहती थीं।

इसका अर्थ यह भी हो सकता है कि स्त्रियों को अपने पतियों के या सब पुरुषों के भविष्यद्वाणी-सम्बन्धी कथनों को परखने (पद 29) से अलग रखा गया, क्योंकि उस समय की संस्कृति में यह लज्जा की बात थी कि पत्नियाँ सार्वजनिक आलोचना के द्वारा अपने पतियों को नीचा दिखाएँ।

8.2 पद 34 और 35 एक उद्धरण?

यह सम्भव है कि पौलुस यहाँ कुछ कुरिन्थियों को उद्धृत करता है, ताकि उनका खण्डन करे। तब ये पौलुस के शब्द नहीं होते। यह सामान्य रूप से माना जाता है कि पौलुस 1 कुरिन्थियों में कई बार या तो स्वतन्त्र रूप से या शब्दशः किसी पत्र से उद्धृत करता है, इन स्थानों पर: 6:12-13; 7:1; 8:1, 4; 10:23; 15:12। हर उद्धरण को हमेशा उद्धरण कहकर नहीं बताया जाता, बल्कि सन्दर्भ से निकाला जाता है कि वह उद्धरण है या

नहीं। उसे मौखिक रूप से या किसी पत्र के द्वारा बताया गया था कि कुरिन्थुस में ऐसे पुरुष थे, जो स्त्रियों के लिए चुप रहने की ऐसी आज्ञा की माँग कर रहे थे। चुप रहने की ऐसी माँगें उस समय यूनानियों और रोमियों की संस्कृति में थीं।

व्यवस्था का हवाला अजीब है, क्योंकि मूसा की व्यवस्था में न चुप रहने की कोई आज्ञा है, न अधीनता की कोई आज्ञा। पुराने नियम में हमें स्त्रियों की अधीनता और उनके चुप रहने के विषय में कुछ नहीं मिलता, सृष्टि के वृत्तान्त में भी नहीं। ठीक पौलुस ही स्पष्ट रूप से दिखाता है कि मसीहियों के लिए मूसा की व्यवस्था अब जीवन का नियम नहीं, और आराधना-सभा के स्वरूप के लिए तो बिलकुल भी निर्णायक नहीं। इसलिए यहाँ कोई यहूदी, या यूनानी, या रोमी व्याख्या या नियम अभिप्रेत हो सकता है, जिसका हवाला ऐसे लोग देते थे, पर ईश्वरीय व्यवस्था नहीं, और न मसीह की व्यवस्था। यह इस मत का समर्थन करता है कि यहाँ एक उद्धरण है।

यदि यह उद्धरण है, तो पद 36 में पौलुस इस अस्वीकार्य माँग पर स्पष्ट, बल्कि क्रोध के साथ प्रतिक्रिया करता है। जर्मन भाषा में और बाइबल-अनुवादों में यह ऐसे दिखाई नहीं देता। उसकी प्रतिक्रिया को ऐसे व्यक्त किया जा सकता है: “क्या?” या “बकवास!” या “किसी भी हाल में नहीं” स्त्रियाँ सभा में चुप रहें। यह पौलुस की ओर से एक तीव्र आपत्ति और खण्डन होता।

8.3 पद 34 और 35 बाद में जोड़े गए?

ये पद पराए-से लगते हैं और इनमें ऐसी बातें हैं, जो पौलुस के यहाँ और कहीं ऐसे नहीं मिलतीं। अब प्राचीन हस्तलिखित गवाहों से स्पष्ट संकेत मिलते हैं कि ये पद नक़ल करनेवालों द्वारा जोड़े गए हैं।

यदि हमारे पास केवल भीतरी सन्देह होते, अर्थात् विरोधाभासी या कठिनाई से समझ में आनेवाले कथन, तो हमें अब भी स्पष्टता की प्रतीक्षा करनी पड़ती। पर अब हस्तलिखित प्रमाणों के ऐसे निष्कर्ष हैं, जो इसकी पुष्टि करते-से लगते हैं।

पहला ठोस सन्देह इस तथ्य से जागता है कि ये दोनों पद हस्तलिपियों में कई बार अलग-अलग स्थानों पर मिलते हैं। एक बार वहाँ, जहाँ वे सामान्यतः हमारे यहाँ हैं, अर्थात् पद 33 के बाद। **पर दूसरी हस्तलिपियों में वे पद 40 के बाद हैं।** सबसे सरल व्याख्या यह है: किसी ने उन्हें किसी कोडेक्स के हाशिये पर लिख दिया। अगले नक़ल करनेवाले ने इस हाशिये की टिप्पणी को मुख्य पाठ में डाल दिया, और यह उसने तय किया कि किस स्थान पर। यदि वह हमेशा एक ही स्थान होता, तो कुछ भी ध्यान में न आता।

इस आरम्भिक सन्देह की पुष्टि चौथी शताब्दी के महत्वपूर्ण **कोडेक्स वैटिकनस (Codex Vaticanus)** में हुई एक खोज से होती है। यह नए नियम की सबसे महत्वपूर्ण बड़ी हस्तलिपियों में से एक है। इस पाठ में सचमुच ये और कुछ दूसरे पद बाद में जोड़े गए पदों के रूप में चिह्नित हैं।

छठी शताब्दी के कोडेक्स फ़ुल्डेन्सिस (Codex Fuldensis) में भी दोनों पाठ-रूप हैं, और जिसमें पद 34 और 35 **नहीं** हैं, उसे सुधार के रूप में समझा जाता है।

इसलिए दोनों कोडेक्सों (हस्तलिपियों) के मूल आधारों में ये पद नहीं थे!

तब वे पौलुस से भी नहीं आते। पौलुस के लिखे न होने के कारण वे ईश्वर-प्रेरित भी नहीं, और सीधे-सीधे ग़लत हैं। उस झूठे बीज की तरह, जो अच्छे बीज के बीच बोया गया और आज तक उग रहा है। यदि इन दोनों पदों के प्रभाव को देखा जाए, कि उन्होंने स्त्रियों के लिए क्या किया है, और इन शब्दों ने कितने आँसू, झगड़े और फूट लाई है, तो इस धारणा के पीछे के सन्देह को भली-भाँति समझा जा सकता है।

इन पदों के हट जाने से 1 कुरिन्थियों 14 का अन्तिम भाग फिर से सुसंगत हो जाता है और विचारों का एक स्पष्ट क्रम बनता है।

जो स्त्रियाँ चुप रहने की आज्ञा को अक्षरशः गम्भीरता से लें, उन्हें साथ मिलकर स्तुति गाना भी नहीं चाहिए (14:15) और "आमीन" भी नहीं कहना चाहिए (14:16)। पर वे यह वहाँ भी करती हैं, जहाँ चुप रहने की आज्ञा को ऐसे समझा जाता है। यह असंगत है और दिखाता है कि इस व्याख्या के अनुसार स्वयं पौलुस भी अपना ही खण्डन करता। यहूदियों के आराधनालय में शायद ऐसा रहा हो, पर जी उठे हुए की सभाओं में नहीं।

मुझे यह दुःखद लगता है कि पुरुषों ने पौलुस के इस वचन के साथ अध्याय के, पत्री के और नए नियम के सन्दर्भ की परवाह किए बिना स्त्रियों के विरुद्ध यह व्याख्या चुनी और इस प्रकार सब स्त्रियों को चुप रहने के लिए बाध्य किया। इससे वे सभाओं से बहुत-सा आत्मिक धन छीन लेते हैं, बल्कि प्रभु की आवाज़ तक। क्योंकि बहनों में भी तो परमेश्वर का आत्मा और आत्मा के वरदान हैं। क्या ऐसा हो सकता है कि सबसे महत्व-पूर्ण सभा में मसीह की आधी देह को चुप रहना पड़े? या आत्मा केवल पुरुषों के द्वारा ही काम करे?

मैंने सीखा है कि सदा पवित्रशास्त्र की तुलना पवित्रशास्त्र से की जाए और ऐसे समानान्तर पाठ खोजे जाएँ, जो किसी व्याख्या का समर्थन और पुष्टि करें। क्या कोई और पाठ है, जिसमें स्त्रियों के लिए चुप रहने की आज्ञा हो, जो उसे परोक्ष रूप से मानकर चलता हो या उसकी आज्ञा देता हो? नहीं।

कुल मिलाकर केवल ऐसे कथन हैं, जो स्त्रियों की भागीदारी को सीधे या परोक्ष रूप से दिखाते हैं और उसका अनुमान कराते हैं। चुप रहने की आज्ञा एक ही पाठ है। ऊपर से असामान्य, इसलिए या तो यह किसी ऐसे बो-लने की ओर संकेत करता है जो अनुचित है और इसलिए वर्जित है, या यह पौलुस का नहीं है – बिना अनुमति के जोड़ा गया अंश या एक उद्धरण। तब यह कोई प्रेरितीय निर्देश नहीं, बल्कि ठीक उसका उलटा होता।

इतने थोड़े प्रमाणों के आधार पर कोई बहनों के विरुद्ध निर्णय लेने और उन्हें जीवन भर मसीहियों की सबसे महत्वपूर्ण सभा में बोलने से रोकने तक कैसे पहुँच जाता है? और साथ ही, जब उनसे इस विषय पर बात की जाए, तो अत्यन्त भावुक और उत्तेजित होकर प्रतिक्रिया करता है? क्या मैं उन पुरुषों से, जो इस पर अड़े रहते हैं, सच्चे मन से निवेदन कर सकता हूँ कि वे एक बार उनकी स्थिति में अपने को रखकर देखें? अर्थात् केवल दो वाक्यों से इतने दूरगामी, कठोर और साथ ही न समझ में आनेवाले, बल्कि विरोधाभासी आदेश को प्रभु की आज्ञा के रूप में स्वीकार करना? प्रभु की आज्ञाएँ समझ में आनेवाली हैं, पराई और संदिग्ध नहीं; वे उन्नति के लिए और हमारी भलाई के लिए हैं, किसी लिंग को नीचा दिखाने के लिए नहीं।

मैं यह प्रश्न पूछे बिना नहीं रह सकता: **किसको सबसे अधिक इसमें रुचि है कि हव्वा की बेटियाँ चुप रहें और उनका मुँह बन्द कर दिया जाए? वह पुराना साँप है, जिसने वाटिका में ही स्त्री पर आक्रमण किया था। पर परमेश्वर स्त्री के पक्ष में खड़ा होता है, उसका वंश साँप के सिर को कुचल देगा।**

जो लोग आराधना-सभा में वचन और गीत के योगदान से, प्रचार या जीवन की गवाही से बहनों की भागीदारी का समर्थन करते हैं, उन पर कभी-कभी नारीवाद या सांसारिकता का आरोप लगाया जाता है। इस पर मुझे उत्तर देना पड़ता है: इस अत्यन्त सम्भावित स्थिति में कि ये दोनों पद एक सांसारिक नियम को दोहराते हैं, जो स्त्रियों को सार्वजनिक जीवन से बाहर रखना चाहता है और इस प्रकार उनके साथ भेदभाव करता है – तो इस प्रश्न में सांसारिक कौन है?

यदि स्त्रियाँ आज भी सभाओं में पहली या दूसरी शताब्दी की किसी सांसारिक आज्ञा के कारण चुप रहती हैं, जिसने धोखे से बाइबल में प्रवेश पा लिया है, तो यह एक दुःखद घोटाला है!

9 क्या बहनों के लिए शिक्षा देने पर कोई रोक है?

पौलुस और यीशु ने स्त्रियों के साथ जैसा व्यवहार किया, उसे देखते हुए हमें यह विचार नहीं आता कि स्त्रियाँ शिक्षा नहीं दे सकतीं। वे उनमें से हैं, जो आराधना-सभा में कोई शिक्षा प्रस्तुत कर सकती हैं (1 कुरिन्थियों 14:26), जो सिखाती हैं, जैसे प्रिस्का ने अपुल्लोस को सिखाया (प्रेरितों के काम 18:26), या जिन्हें अच्छी बातें सिखानेवाली होना है (तीतुस 2:3)। पुरुषों की तरह वे भी उन मनुष्यों में हैं, जो सीखी हुई बातों को आगे देते हैं, यह कि वे फिर दूसरों को सिखाते हैं (2 तीमुथियुस 2:2)। और सिखाने का आत्मिक वरदान भी पुरुषों तक सीमित नहीं है (रोमियों 12:7)।

यीशु चाहता है कि स्त्रियाँ पुरुषों के समान ही सिखाएँ: (मत्ती 28:19-20) इसलिए तुम जाकर सब जातियों को चेला बनाओ, और उन्हें पिता और पुत्र और पवित्र आत्मा के नाम से बपतिस्मा दो, **और उन्हें सब बातें जो मैंने तुम्हें आज्ञा दी हैं, मानना सिखाओ।**

परन्तु बोलने पर रोक की तरह यहाँ भी पवित्रशास्त्र का **केवल एक ही** वचन है, जिसे ठीक ऐसे समझा जाता है कि स्त्रियाँ न शिक्षा दें और न अगुवाई करें या अधिकार चलाएँ। इस पर अलग-अलग मत हैं कि क्या इन पदों में बात केवल आराधना-सभा की है, या जीवन के सब क्षेत्र इसमें सम्मिलित हैं। आराधना-सभा में चुप रहने की आज्ञा इस विषय में अधिकतर बातें स्पष्ट कर देती: जिसे बोलने की अनुमति नहीं, वह वहाँ शिक्षा भी नहीं दे सकता।

1 तीमुथियुस का यह पाठ-अंश इफिसुस की एक ऐतिहासिक और समस्या भरी स्थिति से सम्बन्धित है, जिसे हम ठीक-ठीक नहीं जानते। हमारे पास केवल यह पत्री है, अर्थात् कहानी का एक ही पक्ष। हमें इसका ध्यान रखना चाहिए, इससे पहले कि हम न-जानने या चुप्पी से निष्कर्ष निकालें और उन्हें सब समयों के लिए बाध्य-कारी आज्ञाओं के रूप में प्रस्तुत करें। इस अर्थ में यह पत्री हमको नहीं लिखी गई, बल्कि हमारे लिए लिखी गई है। इसके विपरीत, पानेवालों ने अपनी स्थिति में सब कुछ समझ लिया था। पूरे अनुच्छेद, पद 8-15, को लेना चाहिए; हम पद 11-14 तक सीमित रहते हैं। इस अध्याय के अन्त में पूरे अंश का एक भावानुवाद आता है।

> [1 तीमुथियुस 2:11-14] स्त्री चुपचाप पूरी अधीनता में सीखे। पर मैं स्त्री को न शिक्षा देने की, और न पुरुष पर प्रभुता करने की अनुमति देता हूँ, परन्तु चुप रहने की; क्योंकि आदम पहले रचा गया, उसके बाद हव्वा; और आदम धोखा नहीं खाया, परन्तु स्त्री धोखा खाकर अपराध में पड़ गई।

यह वाक्य कि स्त्री सीखे, इस अंश में आज्ञा के रूप में अकेला वाक्य है, और ऊपर से क्रान्तिकारी। शिक्षा अधिकतर स्त्रियों के लिए न सुलभ थी, न वांछित। यहाँ इन निर्देशों की एक कुंजी है। स्त्री – और यहाँ केवल एक विशेष स्त्री (“एक” स्त्री) या स्त्रियों का एक समूह अभिप्रेत हो सकता है – ग्रहणशील होकर सीखे। ताकि वह अधूरे ज्ञान से या झूठी शिक्षाओं से, जिनका उल्लेख 1 तीमुथियुस में कई बार है, हावी होनेवाले ढंग से शिक्षा न दे, या यह न समझे कि वह अपने पतियों को सिखा सकती है।

प्रभुता करना शब्द का अर्थ यहाँ न आत्मिक अगुवाई है, न शिक्षा का अधिकार। यह यूनानी शब्द नए नियम में केवल एक ही बार आता है, और उस समय की बोलचाल की भाषा में इसका अर्थ कुछ नकारात्मक था। पौलुस अधिकार या प्रभुत्व के लिए दूसरे शब्दों का प्रयोग करता है। इसलिए तीमुथियुस की पत्री में यह एक बहकने का, एक नकारात्मक, धमकाने वाले से लेकर सीमा लाँघनेवाले व्यवहार का वर्णन करता है। यही बात वह पुरुषों के लिए भी वर्जित करता। पर यहाँ यह ठोस रूप से स्त्रियों की समस्या थी। **शिक्षा देना और प्रभुता करना** कोई वांछित नहीं, बल्कि एक ग़लत जोड़ है, जिसके विषय में हम ठीक से यह भी नहीं जानते कि उसका क्या अर्थ हो सकता है। क्योंकि ठीक-ठीक समस्या क्या थी, इसे हम इन शब्दों से केवल फिर से गढ़ने का प्रयास कर सकते हैं। **शिक्षा देने का अधिकार खरी शिक्षा सिखाने से, सिखाने के वरदान से, और कलीसिया तथा उसके अगुवों की सहमति और समर्थन से आता है।**

अधिक सटीक अनुवाद में यह कहता है: मैं अभी स्त्री को अनुमति नहीं देता ... इस प्रकार यह पाठ एक स्थानीय स्थिति को सम्बोधित करता है, जो भलाई की ओर बदल सकती थी, जब स्त्री अपना "गृहकार्य" कर ले। ठीक इन्हीं सुधारों की याद दिलाना पूरी पत्री का कारण है, जो कई ठोस व्यक्तियों और झूठी शिक्षाओं को सम्बोधित करती है (1 तीमुथियुस 1:3-6; 1:19-20; 4:1-10; 5:13-16; 6:3-10; 6:20-21)।

अब पौलुस संक्षेप में आदम और हव्वा की कहानी का उल्लेख करता है। तुलना और उदाहरण के रूप में। आदम की किसी प्राथमिकता का वर्णन करने के लिए नहीं। या शिक्षा पर रोक के कारण के रूप में हव्वा की, और इस प्रकार सब स्त्रियों की, किसी अधिक कमज़ोरी या परीक्षा में पड़ने की प्रवृत्ति का वर्णन करने के लिए नहीं। यह तथ्य कि आदम पहले रचा गया, उसकी अगुवाई की भूमिका का, और इस प्रकार पतन से पहले की किसी सृष्टि की व्यवस्था का आधार नहीं है; वह बस वास्तविक क्रम बताता है। दूसरे शब्दों में: पौलुस यह नहीं कहता कि स्त्रियाँ शिक्षा नहीं दे सकतीं, क्योंकि आदम पहले रचा गया। छोटा-सा शब्द "क्योंकि" मूल पाठ में कभी-कभी, पर हमेशा नहीं, किसी कारण का आरम्भ होता है; बल्कि दूसरे स्थानों की तरह यह बस पुराने नियम से एक तुलना और चित्र का आरम्भ भी हो सकता है।

केवल पानेवाले ही ठीक-ठीक जानते थे कि पौलुस इस सन्दर्भ में आदम और हव्वा का उल्लेख क्यों करता है। हम नीचे दी गई व्याख्याओं को सम्भव और समझ में आनेवाली मानते हैं, बिना उनसे दूरगामी निष्कर्ष निकाले:

इफिसुस में फैली ज्ञानवादी (gnostische) शिक्षाओं में बाइबल के सृष्टि-वृत्तान्त को मूर्तिपूजक तत्वों के साथ, विशेषकर ज्ञानवाद (Gnosis) के साथ, मिला दिया गया था (6:20)। ये शिक्षाएँ हव्वा को पहली के रूप में और उस स्त्री-शक्ति के रूप में ऊँचा उठाती थीं, जिसने आदम में प्राण फूँका। शायद क्रम पर बल देने-वाला यह उल्लेख एक सुधार के रूप में था। अरतिमिस (Artemis) की पूजा ने, जो इफिसुस के नगर-जीवन को निर्धारित करती थी, अपने मिथकों, शिक्षाओं और रीतियों के साथ कोई भूमिका निभाई होगी। कलीसिया के लिए यह एक ख़तरा था। यहाँ इसका उल्लेख तो नहीं है, पर प्रेरितों के काम 19 में इसकी जीवन्त झलक मिलती है। पौलुस इन ख़तरों को अच्छी तरह जानता था, वह काफ़ी समय तक इफिसुस में रहा था।

हव्वा आदम के केवल बाद में ही नहीं, बल्कि आदम में से और आदम के लिए रची गई थी, ताकि एक सहायक, बराबर की साथी हो, जो सब कुछ उसके साथ बाँटे। जब साँप उसके पास आता है, तो वह

धोखा खाती है, क्योंकि ऐसा लगता है कि वह इस स्थिति का सामना अकेले करना चाहती थी। इस अस्तित्व-सम्बन्धी ख़तरे में वह अपने साथी की ओर नहीं मुड़ती, कि दोनों मिलकर इस चुनौती का सामना करें। इसी प्रकार इफिसुस की स्त्रियाँ, और अन्ततः सब स्त्रियाँ, अपने साथियों की उपेक्षा करके मनमानी न करें, बल्कि उनके साथ मिलकर काम करें और आवश्यकता हो तो उनसे सीखें।

आदम को वर्जित फल की आज्ञा हव्वा के आने से पहले मिली थी। इस अर्थ में हव्वा को यह अपने पति से सुननी पड़ी। हव्वा शायद इसलिए धोखा खा गई कि उसने ठीक से नहीं सुना था। यह इफिसुस की कुछ स्त्रियों के लिए एक चेतावनी थी कि वे सीखें और सुसमाचार की तथा हमारे प्रभु यीशु मसीह की शिक्षा में दृढ़ हों। **तभी वे सिखा सकेंगी, पुरुषों को भी।** आदम धोखा नहीं खाया, उसने आज्ञा सीधे परमेश्वर से पहले हाथ से पाई थी और पूरी जानकारी में पाप किया। जैसा हमने उत्पत्ति में देखा, उसका पाप बहकावा नहीं था, बल्कि खुली आँखों से पाप करना, अर्थात् पूरी जानकारी और सहमति के साथ।

जब पौलुस की पत्री का उद्देश्य झूठी शिक्षा से लड़ना है (1:3 से), तो 2:12 को स्त्रियों द्वारा सही शिक्षा पर रोक के रूप में क्यों पढ़ा जाता है, और स्त्रियों द्वारा झूठी शिक्षा पर रोक के रूप में क्यों नहीं?

अनुचित ढंग से ग़लत बातें सिखाना इफिसुस में एक या कई स्त्रियों की एक ठोस समस्या थी। पर यह स्पष्ट है कि पुरुषों को भी ठीक यही नहीं करना चाहिए। जिन्होंने सत्य सीख लिया है, वे सब सेवा के भाव से दूसरों को सिखाएँ।

अब 1 तीमुथियुस 2:8-15 का एक व्याख्यात्मक भावानुवाद आता है। इस कठिन पाठ को मैं संक्षेप में ऐसे प्रस्तुत करूँगा:

प्रिय तीमुथियुस, इफिसुस में कुछ पुरुषों और कुछ स्त्रियों और उनकी झूठी शिक्षाओं के साथ जो समस्याएँ हैं, उन्हें वश में करने के लिए यह होना आवश्यक है: पुरुष प्रार्थना करना आरम्भ करें। हर जगह, जहाँ वे मिलते हैं। सबके सामने भी। मिथकों और झूठी शिक्षाओं पर झगड़ने के बदले। क्रोध और झगड़ा प्रार्थना को रोकते हैं। मिलकर प्रार्थना करना एक शान्त और चैन भरे जीवन और मेल-मिलाप की ओर ले जाता है। उठे हुए, खुले और ग्रहण करनेवाले हाथों से, जो झगड़े और हिंसा से शुद्ध हों, वे मिलकर हमारे उद्धारकर्ता परमेश्वर की आराधना करें और परमेश्वर के सिंहासन के सामने सब मनुष्यों के लिए विनती करें।

स्वाभाविक है कि स्त्रियाँ भी प्रार्थना करें, ठीक पुरुषों की तरह। इसमें यह महत्वपूर्ण है कि स्त्रियाँ – मेरा अर्थ विशेषकर धनी स्त्रियों से है – जहाँ भी वे उपस्थित हों और देखी जाएँ, सादगी दिखाएँ। उनका शृंगार, जो पुरुषों का और स्त्रियों का भी ध्यान उनकी ओर खींचता है, ताकि वे एक दूसरे से आगे निकलें, ख़र्चीले और भड़कीले केश-विन्यास में, या सोने और मोतियों के गहनों में, और महँगे और अनोखे वस्त्रों में न हो। जो स्त्रियाँ मसीहा के पीछे चलती हैं, उन्हें अपने को इस तरह प्रदर्शित करने की, या इस ढंग से प्रभाव और प्रभुत्व जमाने की आवश्यकता नहीं। एक ऐसा शृंगार और प्रभाव है, जो अधिक मूल्यवान है, जिसका सब मनुष्य आदर भी करते हैं: भले काम।

स्त्री सीखे कि सुसमाचार का सत्य क्या है। सीखने की इच्छा के साथ, ध्यान से और जिज्ञासा के साथ। अपने घर में। विशेषकर इनमें से कुछ स्त्रियों को मैं अभी यह अनुमति नहीं देता कि वे इन सब झूठे मिथकों और

ृषाओं को आगे फैलाएँ। वे अपने पति के ऊपर अपने को न उठाएँ, और न मनमाने ढंग से उस पर हावी होकर उसे सिखाएँ। जब उनके पति या कलीसिया के पुरुष उन्हें खरी शिक्षा समझाएँ, तो वे सुनें। क्योंकि उन्हें इसकी आवश्यकता है, क्योंकि उनमें ज्ञान की कमी है, और यह अज्ञान बड़ी हानि करता है, जब वे घरों में मिथक फैलाती हैं।

आदम और हव्वा की सृष्टि इसके लिए ठीक उपयुक्त उदाहरण है। आदम पहले रचा गया और उसी को हव्वा को सिखाना था। वह धोखा नहीं खाया। पर हव्वा धोखा खा गई और भ्रम में पड़ गई। परीक्षा में वह अपने साथी की ओर नहीं मुड़ी। यदि स्त्रियाँ स्वेच्छा से नहीं सीखतीं, तो वे हव्वा की तरह धोखा खाएँगी और दूसरों के लिए फन्दा बन जाएँगी। यदि इफिसुस की कुछ स्त्रियाँ अपने पतियों से नहीं सीखतीं, तो ठीक यही होगा। जब वे सीख लें, तभी वे दूसरों को, पुरुषों को भी, सिखा सकती हैं।

और ये स्त्रियाँ जान लें कि बच्चे जनने में वे सुरक्षित रखी जाती हैं। हव्वा के बहकावे के बावजूद और प्रसव के बड़े ख़तरों के बावजूद। केवल परमेश्वर, हमारा उद्धारकर्ता, बचाता है; मनुष्यों की बनाई इफिसुस की रक्षक-देवी, अरतिमिस, नहीं। इसलिए वे विश्वास, प्रेम और पवित्रता पर ध्यान लगाएँ। पति-पत्नी के रूप में मिलकर, जो आदम और हव्वा की तरह एक तन हैं। स्त्रियाँ बच्चे पैदा करने से न डरें। कोई उन्हें विवाह करने से न रोके। पुरुष अपने पर यौन संयम रखें और ध्यान रखें कि बहुत अधिक गर्भ उनकी पत्नियों के लिए ख़तरा हैं।

10 सब विश्वासियों का याजकपद

पाप में पतन से पहले, निर्दोषता की दशा में, स्वर्गलोक की वाटिका में आदम और हव्वा राजा हैं, जो प्रभुता करते हैं, और याजक हैं, जो परमेश्वर की उपस्थिति में रहते हैं। उसके साथ और उसके लिए। खेती करना और रखवाली करना ऐसे शब्द हैं, जो बाद में याजकों की सेवा के लिए प्रयुक्त हुए (उत्पत्ति 2:15)।

अदन की वाटिका मन्दिर के परमपवित्र स्थान का एक चित्र है। नया और उत्तम अदन, अर्थात् नई पृथ्वी, एक विश्वव्यापी, सारे संसार में फैला परमपवित्र स्थान होगा। सारी पृथ्वी एक स्वर्गलोक-सी वाटिका होगी। इसी-लिए नया यरूशलेम, जो नई सृष्टि का चित्र है, एक विशाल घन के आकार का है (प्रकाशितवाक्य 21)। यह मन्दिर के परमपवित्र स्थान का ही आकार है। नई पृथ्वी स्त्रियों और पुरुषों से, राजाओं और रानियों से, याज-कों और याजिकाओं से बसी होगी।

क्या वहाँ पुरुष और स्त्री के सम्बन्ध में कोई पद-क्रम होगा? कुछ लोग कहते हैं, नहीं, क्योंकि वह नई सृष्टि है। उनके अनुसार पद-क्रम केवल पुरानी और पतित सृष्टि के लिए लागू है। पर कलीसिया में नई सृष्टि आरम्भ हो चुकी है। वहाँ यह भविष्य अभी से आपसी व्यवहार में दिखाई देता है। तो फिर कलीसिया में अब भी एक ऐसा पद-क्रम क्यों हो, जिसे परमेश्वर नहीं चाहता? **यीशु की कलीसिया में केवल परस्पर और स्वेच्छा से एक दूसरे के अधीन रहना ही मायने रखता है।**

धर्मसुधार ने सब विश्वासियों के याजकपद के इस सत्य को फिर से प्रकाश में लाया। पर कलीसियाई व्यवहार में इसका प्रभाव नहीं, या बहुत कम पड़ा। कोई भी, स्वयं कैथोलिक कलीसिया भी, विश्वासियों के सामान्य या-जकपद पर सन्देह नहीं करता। प्रश्न यह है कि इस सत्य का कलीसियाई जीवन के लिए व्यावहारिक अर्थ क्या है। यह बात कि हर विश्वासी, स्त्री और पुरुष, याजक है, अपने आप में पर्याप्त कारण होना चाहिए कि दोनों लिंग आराधना-सभा में एक ही भूमिका या सेवाएँ निभा सकें। पर ऐसा कहाँ! सब विश्वासियों का याजकपद एक ओर व्यक्तिगत रूप से जिया जाता है। प्रार्थना और परमेश्वर के साथ संगति एक व्यक्तिगत, निजी आशीष है। याजकपद और उससे जुड़ी बलि-सेवा का आदर्श पुराने नियम से आता है, जहाँ याजक आराधना की अगुवाई करता था और बलि चढ़ाता था। **इसलिए सब विश्वासियों के याजकपद के विषय में विश्वासि-यों के इकट्ठे होने के बारे में भी सोचना स्वाभाविक है, जो मिलकर आराधकों के रूप में स्वर्गीय पवित्र-स्थान में प्रवेश करते हैं।** और मिलकर प्रभु की मेज़ पर, आत्मिक वेदी पर, स्तुति के आत्मिक बलिदान चढ़ाते हैं। क्या वहाँ लिंगों में कोई भेद हो सकता है या होना चाहिए? **परमेश्वर का वचन नई वाचा में ये भेद नहीं करता। तो हमें भी नहीं करने चाहिए।**

पुरानी वाचा में केवल पुरुष याजक थे। पर हर पुरुष याजक या लेवीय नहीं हो सकता था। लेवीय होने के लिए लेवीय वंश में जन्म लेना पड़ता था, और याजक होने के लिए हारून के परिवार से आना पड़ता था। और साथ ही विधि के अनुसार शुद्ध होना पड़ता था और शरीर में कोई दोष न हो।

प्रसंगवश कह दूँ कि याजक का काम किसी क़साई के काम की तरह हिंसक और थका देनेवाला था। मध्य-पूर्व की गर्मी में पशुओं को काटना-बाँटना पसीना बहानेवाला काम था, जिसे पुरुष, जो औसतन स्त्रियों से अधिक बलवान होते हैं, बेहतर कर सकते थे। आराधना-सम्बन्धी याजकीय काम का यह रूप आज नहीं रहा।

हमें यह भी ध्यान देना चाहिए कि एक विशेष (पुरुष) लेवीय याजकपद का विकास स्वयं इस्राएल की विफलता का एक चिह्न है, क्योंकि यह तभी उत्पन्न होता है, जब लोग सोने के बछड़े के द्वारा मूर्तिपूजा में बहकाए गए (निर्गमन 32), जिसके विरुद्ध केवल लेवीय खड़े हुए (पद 26-29)। **परमेश्वर का पहला उद्देश्य अपनी प्रजा के लिए यह था कि वे सब "याजकों का राज्य" हों (निर्गमन 19:6), एक दर्शन, जो अब मसीह में और मसीह के द्वारा पूरा होता है (प्रकाशितवाक्य 1:6; इब्रानियों 13:15)। परमेश्वर का लक्ष्य पूरा हो गया है: स्त्रियाँ और पुरुष अब परमेश्वर के याजक हैं।**

हमारा जीवन, केवल पुरुषों का नहीं, बल्कि पुरुषों और स्त्रियों का, परमेश्वर के लिए एक जीवित बलिदान हो – सारा जीवन एक याजकीय सेवा है (रोमियों 12:1-2)।

11 क्या बहनें प्राचीन हो सकती हैं?

यदि बहनों के लिए चुप रहने की कोई सामान्य आज्ञा और शिक्षा देने पर कोई सामान्य रोक नहीं है, तो क्या वे प्राचीन हो सकती हैं?

कुछ कलीसियाओं में आधिकारिक प्राचीन होते हैं, और कलीसिया का हर सदस्य जानता है कि कौन प्राचीन है। कुछ कलीसियाएँ केवल प्राचीनों की एक सेवा की बात करती हैं, जिससे मूल रूप से कोई अन्तर नहीं पड़ता, जब बात यह हो कि उनके काम क्या हैं: शिक्षा देना, झुण्ड की रक्षा करना और उसकी अगुवाई करना, देखभाल, निगरानी, आत्मिक परामर्श।

हर व्यक्ति अपने समय की सन्तान है, जब तक कि वह पूरी तरह अलग-थलग न रहा हो। समय बदलते हैं, कभी-कभी भलाई की ओर। मैं इससे क्या कहना चाहता हूँ? यह कि नए नियम की पत्रियाँ ऐसे समय में लिखी गईं, जब पितृसत्ता समाज की मूल व्यवस्था थी। स्त्री को पुरुष से कम योग्य और हीन समझा जाता था, और इसलिए वह सार्वजनिक जीवन में उपस्थित नहीं थी। स्त्रियों को मत देने का अधिकार नहीं था। ठीक यही भेदभाव, चाहे छोटे या बड़े रूप में, पतन के द्वारा आया है।

हमने देखा है **कि यीशु और पौलुस युग की आत्मा के अनुसार नहीं ढले, बल्कि उन्होंने स्त्रियों को वह गरिमा दी, जो परमेश्वर के स्वरूप के वाहक के रूप में उनकी है।** फिर भी, जहाँ तक हम जानते हैं, प्रेरितों और उनके सहकर्मियों ने शायद केवल पुरुष प्राचीन नियुक्त किए। यह भली-भाँति समझ में आता है। **उन्हें उसी से आरम्भ करना था जो उपलब्ध था, वहाँ से जहाँ लोग अपनी संस्कृति में रहते थे, न कि वहाँ से जहाँ उन्हें देखना चाहते।** पर इसका अर्थ यह नहीं कि सदा ऐसा ही रहना चाहिए या रहना है। कुरिन्थुस की फीबे (रोमियों 16:1) केवल एक अपवाद है, जो पौलुस के समय में ही सम्भव था। अगुवाई अपने आप में पुरुषों का विषय नहीं है। ऐसे बड़े अध्ययन भी हैं, जो दिखाते हैं कि स्त्रियाँ बेहतर अगुवा होती हैं। मैं इसका मूल्यांकन नहीं कर सकता, पर इससे मूल रूप से यह स्पष्ट होता है कि स्त्रियों में कोई मानसिक या बौद्धिक सीमा नहीं है।

पर नया नियम क्या कहता है? इस प्रश्न पर 1 तीमुथियुस 3:1 में एक महत्वपूर्ण संकेत है, जिस पर लगभग ध्यान नहीं दिया जाता:

> यह बात सत्य है: यदि कोई अध्यक्ष की सेवा की लालसा करता है, तो वह भले काम की इच्छा करता है।

यह पद ठीक उस अंश के बाद आता है, जिसमें एक स्त्री के ग़लत शिक्षा देने और प्रभुता करने की बात थी। **यह पद कोई नया अंश आरम्भ नहीं करता, बल्कि 2:8-15 का समापन है।** मूल लेखों में अंश, पदों की संख्याएँ और शीर्षक नहीं थे। अध्याय 3 का पद 1, 2:11-15 की स्त्री या स्त्रियों से सम्बन्धित है। यहाँ यह नहीं लिखा कि यदि कोई पुरुष ऐसी सेवा की लालसा करे। इसका अर्थ उतना ही यह भी हो सकता है कि यदि कोई स्त्री या स्त्रियाँ ऐसी सेवा की लालसा करें। **"कोई" शब्द तटस्थ है, न पुल्लिंग, न स्त्रीलिंग।**

पौलुस चाहता था कि स्त्रियाँ दूसरों को सिखाने से पहले स्वयं सीखें। और सीख लेने के बाद भी हावी होकर शिक्षा की योग्यता को अपने हाथ में न छीनें। तब वे अध्यक्ष या प्राचीन की इस सेवा में आ सकती थीं या उसके लिए बुलाई जा सकती थीं। आवश्यक परिपक्वता और योग्यता के साथ यह सेवा उनके लिए खुली थी (केवल तब नहीं, जब पुरुष उपलब्ध न हों)। पौलुस यहाँ स्त्रियों के लिए द्वार खोलता है, और वह ऐसी स्त्रियों को कब से अपनी सहकर्मिणियों के रूप में जानता था।

फिर आवश्यक योग्यताएँ आती हैं। उनसे यह पता चलता है कि स्वाभाविक रूप से पुरुष भी यह सेवा करें। पुरुषों की केवल एक पत्नी हो। जो स्त्रियाँ प्राचीन होना चाहती थीं, उन पर भी यही लागू होता था। **सूची के आरम्भ से सर्वनाम तटस्थ हैं। "एक पत्नी का पति" उस समय वैवाहिक विश्वासयोग्यता, एक-विवाह, का एक मुहावरा था, न कि इस माँग का कि केवल पुरुष ही प्राचीन हो सकते हैं।**

उस समय पुरुष pater familias (घर के मुखिया) के रूप में घर की अगुवाई करते थे। इसमें अच्छा होना एक योग्यता थी, जो इसी प्रकार स्त्रियों पर भी लागू हो सकती थी (1 तीमुथियुस 5:14 – घर का प्रबन्ध करना)। पौलुस अपनी पत्रियों में ये सब गुण स्त्रियों से भी माँगता है। न ये योग्यताएँ, न अध्यक्ष की सेवा अपने आप में, केवल पुरुषों का विषय हैं।

स्त्रियाँ भी इस भले काम की लालसा कर सकती हैं!

सेवक (डीकन) की सेवा पर कम विवाद है: पद 11 दिखाता है कि स्त्रियाँ भी सेविकाएँ (डीकन) हों।

स्त्रियों को कलीसिया की अगुवाई से बाहर रखने का अर्थ है स्वयं को हानि पहुँचाना (इफिसियों 5:29)। दुःख की बात है कि बहनों को अगुवाई के समूहों से और "भाइयों की सभाओं" से बाहर रखने का एक परिणाम यह भी हुआ कि अकसर कम योग्य या अयोग्य पुरुष कलीसियाओं की अगुवाई में आ गए। इससे हुई हानि का यहाँ वर्णन करने की आवश्यकता नहीं।

पवित्र आत्मा पुरुषों और स्त्रियों को अगुवाई और प्रधानता का वरदान देता है (1 कुरिन्थियों 12:28; रोमियों 12:8)। आइए, हम ऐसी स्त्रियों को खोजना, उन्हें आगे बढ़ाना और उन्हें ऐसी सेवाओं के लिए आमन्त्रित करना आरम्भ करें। एक पहला, सरल क़दम यह होगा कि अगुवाई की बैठकें पुरुष अगुवों की पत्नियों के साथ मिलकर की जाएँ।

यदि पतरस और पौलुस का यह मत है कि कलीसिया की अगुवाई केवल पुरुषों के लिए सुरक्षित है, तो अगुवाई के वरदानों के विषय में उनकी शिक्षाएँ पुरुषों और स्त्रियों दोनों को क्यों सम्बोधित हैं, बिना इस सीमा को स्पष्ट किए? आत्मिक वरदानों के विषय में शिक्षाएँ दिखाती हैं कि नई वाचा में कलीसिया की अगुवाई के सम्बन्ध में पुरुषों और स्त्रियों में कोई अन्तर नहीं है।

इसका खण्डन इस बात से भी नहीं होता कि यीशु ने अपने नए आन्दोलन के संस्थापक प्रेरितों के रूप में बारह प्रेरितों को चुना। हाँ, वे सब यहूदी, स्वतन्त्र और पुरुष थे। **पर उसने उन्हें संक्रमण के एक समय में नियुक्त किया, नई वाचा के आरम्भ होने से पहले। बारह कुलपतियों के अनुरूप वे यीशु के अनुयायियों के रूप में परमेश्वर की प्रजा की पुनर्स्थापना के प्रतीक थे।**

यह निर्विवाद है कि पिन्तेकुस्त के बाद, आत्मा के युग में, बाद के कलीसियाई अगुवे ग़ैर-यहूदी या दास हो सकते थे। यह बात कि बारह यहूदी और स्वतन्त्र थे, ऐसे अगुवों के विरुद्ध कोई तर्क नहीं। उसी प्रकार बारह प्रेरितों का पुरुष होना इस बात के विरुद्ध कोई तर्क नहीं कि बाद के अगुवे स्त्रियाँ हो सकती थीं।

यदि प्रेरितों के लिए यह महत्वपूर्ण होता कि अगुवाई की सेवा में स्त्रियों का कोई स्थान नहीं, तो वे यह कह देते। पर कहीं भी स्त्रियों को बाहर रखने का संकेत तक नहीं है।

अन्त में उस आपत्ति के विषय में, कि यह सब बराबरी थोपना है और सृष्टि में दिए गए पुरुष और स्त्री के भेदों को मिटाना है। मैं इसका स्पष्ट खण्डन करता हूँ, क्योंकि आदम के साथ कोई दूसरा आदम नहीं, बल्कि एक हव्वा खड़ी की गई। उसके पास वह है जो उसके पास नहीं। मिलकर वे एक दूसरे के पूरक हैं, बिना किसी पद-क्रमवादी या दर्जे के अनुसार अधीनता या श्रेष्ठता के।

पुरुष और स्त्री के भेद स्पष्ट हैं और अनदेखे नहीं किए जा सकते। समानतावादी शब्द, अर्थात् पुरुष और स्त्री की समानता, इस चर्चा में अधिक सहायक नहीं है। यहाँ बात इसकी नहीं कि पुरुष होना स्त्री होने से अलग क्या है, और उलटे; बल्कि इसकी है कि दर्जे के उस अबाइबलीय भेद को बाहर किया जाए, जिसके द्वारा कलीसिया में स्त्री के कार्य को सीमित किया जाता है या रोक भी दिया जाता है। **स्त्रियों के कार्य को संकुचित करने का अर्थ अन्ततः पवित्र आत्मा का विरोध करना है।**

12 सिर ढाँकना – क्या आज भी?

तथाकथित सिर ढाँकना नए नियम में केवल 1 कुरिन्थियों 11:2-16 में आता है। स्पष्ट है कि कुरिन्थुस में यह विवाद का विषय था। यहाँ भी हम पत्र पानेवालों की पृष्ठभूमि नहीं जानते। कुरिन्थियों ने पौलुस का इस विषय में लिखा हर वाक्य समझ लिया होगा। समझाने का मेरा प्रयास बहुत-से प्रयासों में से एक है। हमारे लिए यह एक कठिन पाठ बना रहता है। इसे समझने के लिए, प्रिय बहन, यदि आप सिर ढाँकती हैं, तो मैं आपसे निवेदन करता हूँ कि एक बार इस अंश से अपने लिए इसका कारण स्पष्ट करें। **आप क्यों, कहाँ और कब सिर ढाँकती हैं (यदि यह आप पर लागू होता है)?**

यहाँ बात यह है कि पौलुस के इस पाठ को, जो हमको नहीं बल्कि हमारे लिए लिखा गया, लागू किया जाए और इस प्रश्न का उत्तर दिया जाए: क्या यह आज बाध्यकारी है, और यदि हाँ, तो कैसे?

इस अंश को अकसर ऐसे समझाया जाता है: पुरुष या पति स्त्री का सिर है और उसकी सृष्टि से दी गई अगुवाई की भूमिका है। स्त्री या पत्नी प्रार्थना और भविष्यद्वाणी करते समय इसे सबके सामने इस प्रकार प्रकट करती है कि उसके सिर पर कुछ होता है, एक ओढ़नी (आज: सिर का कपड़ा, टोपी, घूँघट आदि)। ढाँकने के लिए कौन-सा वस्त्र अभिप्रेत है, यह खुला रह जाता है। शायद ऊपर के वस्त्र का लम्बा छोर आवश्यकता होने पर सिर के चारों ओर और ऊपर डाल लिया जाता था।

पहला प्रश्न यह है कि सिर ढाँकना कहाँ माँगा गया है: आराधना-सभा में या उसके बाहर? बात यह है कि बहनें **कहाँ** प्रार्थना और भविष्यद्वाणी करती हैं। पिछले एक अध्याय (अध्याय 8) में मैंने कहा है कि इसका सम्बन्ध आराधना-सभा से ही होना चाहिए, अर्थात् उस स्थान से, जहाँ पुरुष और स्त्रियाँ मिलकर प्रार्थना और भविष्यद्वाणी करते हैं।

सामान्यतः यह माना जाता है कि पौलुस स्त्रियों से सिर ढाँकने का आग्रह करता है, क्योंकि वे या उनमें से कुछ अब ऐसा नहीं करना चाहती थीं। ऐसा हो सकता है। पद 10 के आधार पर मैं इसे अधिकतर उलटा देखूँगा: **ऐसे पुरुष थे, जो माँग करते थे कि स्त्रियाँ अपनी ओढ़नी उतार दें।** या तो नई मसीही स्वतन्त्रता के रूप में, या अनैतिक उद्देश्यों से, अर्थात् कलीसिया की स्त्रियों को और उनके बालों को ऐसे देख पाने के लिए, जैसा अन्यथा सम्भव नहीं, या लगभग असम्भव था। **इसलिए पौलुस स्त्रियों को प्रोत्साहित करता है और सब स्त्रियों को यह अधिकार देता है (पद 10) कि वे सिर ढाँक सकती हैं।** फिर भी इस प्रश्न का उत्तर देना कि किसने क्या माँगा, अनिवार्य रूप से आवश्यक नहीं है।

इसके साथ यह जानना चाहिए कि उस समय यूनानी कुरिन्थुस में और रोमी साम्राज्य में सिर ढाँकने की क्या भूमिका थी। विवाहित स्त्रियाँ सार्वजनिक स्थानों पर सदा सिर ढाँकती थीं, केवल आराधना-सभा में नहीं। यह एक विवाहित स्त्री के रूप में उनकी गरिमा का भाग था, जो दूसरे पुरुषों के लिए उपलब्ध नहीं थी। वेश्याओं और दासियों के विपरीत, जो सिर नहीं ढाँकती थीं। दासियों के लिए तो यह वर्जित था। ओढ़नी, शायद घूँघट-जैसा एक ऊपर डाला गया वस्त्र, एक ओर सुरक्षा थी और दूसरी ओर पति के प्रति निष्ठा का चिह्न। यह एक

सामाजिक गरिमा थी, जो इस ओढ़नी से प्रकट होती थी। **सिर ढाँकने के सम्बन्ध में अधीनता का प्रश्न प्रासंगिक नहीं था। इस प्राचीन संस्कृति में स्त्रियाँ वैसे भी अधीन थीं। सिर ढाँकना अधीनता का नहीं, बल्कि सम्बद्धता का चिह्न था, अर्थात् अपने पति से जुड़ी होने का। अधीनता कुरिन्थियों के इस पाठ का विषय नहीं है।** जो बात कुरिन्थुस में और उस समय लगभग हर जगह अच्छी सामाजिक रीति थी, वह आज भी इस्लामी देशों में है, पर हमारे यहाँ पश्चिम में अब नहीं। सिर ढाँकने जैसे प्रतीक केवल वहीं अर्थ रखते हैं, जहाँ समाज और उसकी संस्कृति जानती है कि उनका क्या अर्थ है।

पद 10 में पौलुस सिर ढाँकने के विषय को सुलझाने के लिए एक स्पष्ट बात कहता है – **ध्यान दीजिए, मूल पाठ में सिर पर अधिकार या शक्ति का कोई चिह्न रखने के विषय में कुछ नहीं लिखा** (अर्थात् ओढ़नी)। सही अनुवाद में यह कहता है:

> **इसलिए स्वर्गदूतों के कारण स्त्री को अपने सिर पर अधिकार रखना चाहिए।**

यह पद दिखाता है कि शायद यह माँग सामने रखी गई थी कि अब ओढ़नी की आवश्यकता नहीं, क्योंकि पौलुस अब कहता है: स्त्री स्वयं निर्णय कर सकती है कि वह ओढ़नी पहने या नहीं। और यह कलीसिया की सब स्त्रियों के लिए है। उन अविवाहितों, स्वतन्त्र की गई स्त्रियों, दासियों और वेश्याओं के लिए भी, जो विश्वास में आईं। पौलुस हर स्त्री को यह गरिमा देता है कि वह कलीसिया में, या आराधना-सभा में, सिर ढाँके। जिसे एक दिन स्वर्गदूतों का न्याय करने के योग्य ठहराया गया है (1 कुरिन्थियों 6:3), वह निश्चय ही इस विषय में स्वयं निर्णय कर सकती है।

इसके साथ पौलुस उस प्रश्न का भी उत्तर देता है, जो हम 21वीं शताब्दी में यह पाठ पढ़ते समय पूछते हैं: हर स्त्री स्वयं निर्णय करती है कि सिर ढाँकना उसके लिए उचित है या नहीं। न उसका पति, न कलीसिया की अगुवाई के पुरुष। आज आराधना-सभा में ओढ़नी बाहर के लोगों में अधिकतर उलझन उत्पन्न करती है। यह ठीक उसका उलटा होगा, जो वह कुरिन्थुस में करती थी। आज ओढ़नी शब्द के सच्चे अर्थ में अपने समय से बाहर हो चुकी है।

सांस्कृतिक और समय-सम्बन्धी अनुकूलनों के विपरीत, इस पाठ से ये बातें सर्वकालिक बनी रहती हैं:

- **सिर का अर्थ प्रधान, अगुवा या किसी के ऊपर अधिकार नहीं, बल्कि उत्पत्ति और स्रोत है।**
- मसीह सिर के रूप में पुरुष का आदरणीय उद्गम है (उसके सृष्टिकर्ता के रूप में); पुरुष (आदम) सिर के रूप में स्त्री (हव्वा) का आदरणीय उद्गम है; और परमेश्वर सिर के रूप में मसीह का आदरणीय उद्गम है (उसके देहधारण में)।
- **पुरुष और स्त्रियाँ आराधना-सभा में प्रार्थना करते और भविष्यद्वाणी से बोलते हैं।**
- हर कोई अपने आदरणीय सिर को अपने अस्तित्व के स्रोत और उद्गम के रूप में आदर देता है, विशेषकर सम्मान-और-लज्जा की संस्कृति में। लज्जा और अनादर परमेश्वर से नहीं, बल्कि संस्कृति से सम्बन्धित हैं।
- **पुरुष और स्त्री का भेद पहचाना जाता रहे।**

- पुरुष और स्त्री एक दूसरे पर निर्भर हैं, वे बिना पद-क्रम के, या मूल्य और दर्जे के भेद के बिना, एक दूसरे के पूरक हैं।
- **परमेश्वर की महिमा और आदर सबसे आगे है। आराधना-सभा में कुछ भी परमेश्वर से ध्यान न हटाए।**
- पौलुस लिंगों के इस विषय को एक वाक्य में समेट देता है, जो समान दर्जे को ठीक-ठीक व्यक्त करता है, जैसा वह इकट्ठी कलीसिया में, आराधना-सभा में भी, लागू होता है:
- क्योंकि जैसे स्त्री पुरुष से है, वैसे ही पुरुष भी स्त्री के द्वारा है; परन्तु सब वस्तुएँ परमेश्वर से हैं। [1 कुरिन्थियों 11:12]

इस जटिल अंश में स्वाभाविक रूप से केवल इस एक पद 10 (या 12) से कहीं अधिक है, जो ठीक अंश के बीच में है।

इसलिए, जैसे 1 तीमुथियुस 2 में, अब मेरा व्याख्यात्मक पूरे अंश का भावानुवाद आता है, जैसे मैं इसे संक्षेप में समझाऊँगा:

मेरे लिए यह महत्वपूर्ण है कि तुम कुरिन्थी इस बात को समझो कि हर पुरुष का उद्गम, अर्थात् उसका सिर, मसीह है, मसीहा। उसके द्वारा आदम रचा गया, और उसके साथ सब पुरुष। और पुरुषों के रूप में तुम उससे जुड़े हुए हो।

स्त्री का सिर पुरुष है। उसकी बगल से हव्वा गढ़ी गई, ताकि उसके साथ एक हो जाए। वह सिर, वह देह। पुरुष उसका उद्गम है, और वह भी उससे जुड़ी है, पत्नी के रूप में, सहायता और पूर्ति के लिए।

यही सम्बन्ध हम मसीह में भी देखते हैं। उसका सिर परमेश्वर है। जब वह मनुष्य बना, तो परमेश्वर ने उसे, अपने पुत्र को, जो उसके बराबर है, उत्पन्न किया।

यदि कुरिन्थुस में कोई पुरुष सभा में ऊँचे स्वर से प्रार्थना करे या भविष्यद्वाणी से बोले, और उसका सिर ढका हो, तो यह अनादर की बात है। वह स्वयं को आदर देता है, न कि मसीह को, अपने सिर को। क्योंकि मूर्तिपूजक जब मूर्तियों को बलि चढ़ाते हैं, तो अपना सिर ढाँकते हैं। बिना सिर ढाँके पुरुष नम्रता दिखाता है और अदृश्य मसीह को आदर देता है।

स्त्रियों के साथ यह उलटा है। जो स्त्रियाँ सभा में प्रार्थना करती और भविष्यद्वाणी से बोलती हैं और सिर नहीं ढाँकतीं, वे अपने सिर पर लज्जा लाती हैं। वे स्वयं का और अपने पति का, अर्थात् अपने सिर का, अनादर करती हैं। क्योंकि खुले बालों के साथ वे ध्यान परमेश्वर और मसीह की ओर नहीं, बल्कि अपनी ओर खींचती हैं।

यदि कोई माँग करे कि स्त्रियों को सिर ढाँकने की आवश्यकता नहीं, तो वह इस बात को अन्त तक नहीं सोचता। क्योंकि तुम तो जानते हो कि कुरिन्थुस में बिना ओढ़नी की स्त्री मुण्डी हुई स्त्री के समान मानी जाती है, और उस स्त्री के समान, जो वेश्यावृत्ति करती है या यौन सम्बन्ध की ताक में है। यदि वह सार्वजनिक स्थान पर

अपने को न ढके या सिर न ढाँके, तो तर्क के अनुसार उसे अपने बाल भी कटवा लेने चाहिए, या पूरा सिर मुण्डवा लेना चाहिए।

मैं जानता हूँ, अपनी माँग से तुम यह तो नहीं चाहते! पर जिस समाज में तुम रहते हो, उसमें यही परिणाम होगा! इसलिए उन लोगों के लिए ठोकर का कारण बनने का जोखिम न उठाओ, जो तुम्हारे पास आते हैं और देखते हैं कि तुम्हारे यहाँ सार्वजनिक रूप से सिर ढाँकने की सामान्य रीति ठुकराई जाती है।

पुरुष आराधना-सभा में, परमेश्वर की उपस्थिति में, अपने को न ढकें। क्योंकि पुरुष परमेश्वर का स्वरूप और उसकी महिमा की झलक है। स्त्री भी परमेश्वर का स्वरूप है, पर इसके अतिरिक्त वह पुरुष की महिमा की झलक भी है। उसकी सुन्दरता उसके पति की सुन्दरता है, जिसमें से वह रची गई और जिसके साथ वह एक है।

वह उसकी महिमा कैसे बन सकी? निश्चय ही इसलिए नहीं कि वह उसमें से रचा गया, बल्कि इसलिए कि वह उसमें से, उसकी बगल से गढ़ी गई। और वह पुरुष की महिमा इसलिए नहीं कि वह उसके लिए रचा गया, बल्कि उलटे। वह उसके लिए रची गई, क्योंकि वह अकेला था और उसे सहायता की आवश्यकता थी।

इसलिए, क्योंकि स्त्री का ऐसा मूल्य है और वह पुरुष के लिए इतनी बड़ी आशीष है, वह अपने सिर के विषय में स्वयं निर्णय करे और उसे ढाँकने का अधिकार रखे। कोई उस पर यह थोप नहीं सकता। न उसका पति, न कलीसिया के अगुवे उस पर यह आदेश दे सकते हैं कि वह ओढ़नी न पहने (या पहने)। एक दिन वह स्वर्गदूतों का भी न्याय करेगी – तब वह इस विषय में निश्चय ही निर्णय कर सकती है और उसे करने का अधिकार है।

फिर भी स्त्री अपनी स्वतन्त्रता और निर्णय की स्वाधीनता में यह ध्यान रखे कि वह अपने पति से अलग स्वतन्त्र नहीं है। वह पुरुष के बिना नहीं, और पुरुष भी स्त्री के बिना नहीं। परमेश्वर का विचार सदा पुरुष और स्त्री का साथ मिलकर चलना और साथ रहना था। सिर और देह की एकता में वे साथ, एक मन होकर, एक दूसरे के अधीन रहकर, एक दूसरे के पूरक होकर काम करते हैं।

इसका क्या अर्थ है कि एक दूसरे के बिना नहीं? पहले मनुष्य-जोड़े की सृष्टि को फिर से याद करो। आरम्भ में स्त्री पुरुष में से आई। उसकी बगल से। उसके पास लाई गई, ताकि फिर उसके साथ एक तन हो। पर आगे सोचो: तब से हर पुरुष एक स्त्री से आता है। पुरुष के बिना कोई स्त्री न होती और स्त्री के बिना कोई पुरुष न होता। दोनों समान गरिमा, समान मूल्य और समान दर्जे के हैं, अपनी भिन्नता में सिद्ध पूर्ति। यह सब परमेश्वर का विचार था। वही सिर है, जिससे यह निकला है।

इसे देखते हुए मैं तुमसे पूछता हूँ: क्या यह शोभा देता है कि कोई स्त्री सबके सामने, पर बिना घूँघट और बिना ओढ़नी के, परमेश्वर से प्रार्थना करे? नहीं, तुम सहमत होगे, कुरिन्थुस और रोमी साम्राज्य की रीतियों को देखते हुए यह शोभा नहीं देता। कुछ रीतियाँ और प्रथाएँ हैं, जो मनुष्यों के लिए प्रकृति के नियमों जैसी होती हैं। यदि कोई पुरुष प्रचलित रीति के विरुद्ध लम्बे बाल रखे, तो इसे लज्जा की बात समझा जाता है। यहाँ भी स्त्रियों के साथ ठीक उलटा है। स्त्रियों के लम्बे बाल उनकी महिमा हैं, उनका स्वाभाविक शृंगार, जो ऐसे ही देखा जाता है। लम्बे बाल उसे सजानेवाले घूँघट या ओढ़नी की तरह दिए गए हैं, ताकि वह पुरुष की महिमा हो।

यह शृंगार, जो पुरुषों को इतना आकर्षक लगता है, उसे सभा में ढाँकना चाहिए। यह इस महिमा के साथ ध्यान खींचने का स्थान नहीं, ठीक वैसे ही जैसे पुरुष को अपनी नम्रता खुले सिर से दिखानी है। क्योंकि बात परमेश्वर के और मसीह के आदर और महिमा की है।

यदि कुरिन्थुस में कोई इस पर विवाद करना चाहे और सिर ढाँकने की इस रीति पर प्रश्न उठाए, तो उसे स्वयं समझ लेना चाहिए कि ऐसा कहीं नहीं होता। जैसे तुम स्त्रियों पर यह आदेश थोपना चाहते हो कि वे ओढ़नी न पहनें। कोई कलीसिया ऐसा नहीं करती, इसलिए उसी पर बने रहो, जो सिर ढाँकने के लिए सामान्यतः लागू है और आदरयोग्य है, और किसी के लिए ठोकर का कारण नहीं बनता।

13 पुरुष सिर के रूप में – एकतरफ़ा अधीनता?

कम से कम सात बार पौलुस और पतरस पत्नियों से कहते हैं कि वे अपने पतियों के अधीन रहें, तब भी जब वे विश्वासी न हों और प्रेम से व्यवहार न करें। उस समय यह बिलकुल सामान्य था और कोई नई बात नहीं थी कि स्त्रियों को ऐसा व्यवहार करना पड़ता था। पति घर का स्वामी था। वह शासन करता था और सब उसके अधीन थे: पत्नी (या पत्नियाँ), बच्चे, दास और घर के दूसरे निवासी। महान दार्शनिक अरस्तू (Aristoteles) ने प्राचीन काल में घर को इसी तरह व्यवस्थित किया था, ऊपर से नीचे की ओर, स्पष्ट पद-क्रम के साथ। ऐसे ही जीवन जिया जाता था, इसी से साम्राज्य और प्राचीन समाज को स्थिरता और व्यवस्था मिलती थी। इससे हटना सहन नहीं किया जाता था। यह बाइबल का आदर्श नहीं था, क्योंकि वह पुरुष और स्त्री का वर्णन बिना पद-क्रम के, बराबर के साथियों के रूप में करता है। पर यह ऐसा बन गया था, जैसा पतन के बाद पहले से कहा गया था (उत्पत्ति 3:16)। ठीक इसी सामाजिक ढाँचे से सारे रोमी साम्राज्य में सुसमाचार का सामना होता है।

अधीनता पर इतना बल क्यों दिया जाता है, और क्या वह आज भी ठीक वैसे ही लागू होती है? बहुत-सी स्त्रियों ने अपनी भूमिका को कठिनाई से सहने योग्य और बिना किसी निकास के अनुभव किया। जहाँ तक सम्भव था, उन्होंने इसके साथ समझौता कर लिया। वे अधिकतर अपने पति से बहुत छोटी होती थीं, वे उसकी सम्पत्ति थीं, उनकी कोई आवाज़ नहीं थी, लगभग कोई स्वतन्त्रता नहीं और कोई अधिकार नहीं। प्रेम-विवाह होता ही नहीं था! अधीनता आनन्द से अधिक बोझ और विवशता थी। अब, यीशु को माननेवाली होकर, वे यीशु मसीह के साथ एक जीवित सम्बन्ध में आ गई हैं। अब वे उसके साथ जीती हैं और अब सीख सकती हैं कि अपने पतियों के अधीन हृदय से रहें, जैसे प्रभु के। जो स्वतन्त्रता सुसमाचार उनके लिए लाया था, और जो गरिमा उसने उन्हें स्त्री के रूप में लौटाई थी, वह अपने पतियों के विरुद्ध विद्रोह करने का कारण नहीं बननी थी। प्रेरित इस बात पर बड़ा बल देते हैं कि इस व्यवहार के कारण उस समय के समाज में सुसमाचार की निन्दा न हो।

इस प्राचीन संसार में घर के स्वामियों के रूप में पति स्त्री के सिर के रूप में दिखाई देते हैं। जैसा पहले कहा गया, यह बाइबल का आदर्श नहीं, बल्कि जीवन की वास्तविकता है, जिसका आगे मूल्यांकन नहीं किया जाता। पर उसकी नई परिभाषा दी जाती है। क्योंकि नए नियम में पुरुषों को कहीं भी यह आज्ञा नहीं दी जाती कि वे अच्छा शासन करें या बुद्धिमानी से प्रभुता करें। प्रभु यीशु मसीह के आदर्श के अधीन सिर होने को एक नई परिभाषा मिलती है (इफिसियों 5:21-33): सिर, अर्थात् पति, अपनी पत्नी से अपने समान प्रेम रखे, आत्म-बलिदान तक प्रेम रखे। वह उसका पालन-पोषण करे और उसकी देखभाल करे।

जब ये शब्द इकट्ठी हुई घरेलू कलीसिया में पढ़कर सुनाए जाते थे, तो प्राचीन घर के हर निवासी को सीधे सम्बोधित किया जाता था। यह भी असामान्य था। पर केवल इतना ही नहीं, क्योंकि पौलुस पुरुषों से जो माँ-गता था, वह क्रान्तिकारी था। पति-पत्नी का एक दूसरे के साथ, बच्चों और दासों के साथ ऐसा व्यवहार घर के पितृसत्तात्मक ढाँचे को एक प्रकार की “प्रेम-पितृसत्ता” बना देता था। और इस प्रकार पुरुष और स्त्री का

ढाँचा उसके निकट आने लगा, जो परमेश्वर आरम्भ में चाहता था। उस समय की सामाजिक संरचनाओं पर आक्रमण किए बिना। वह सुसमाचार को सबसे अधिक हानि पहुँचाता। पतित संसार की ये दृढ़ संरचनाएँ मसीह के प्रेम के द्वारा भीतर से कमज़ोर, नरम और परिवर्तित की जाती हैं।

यही बात मन फिराए हुए दासों पर भी लागू होती थी। उन्हें अपने स्वामियों के अधीन रहना था। आज किसी को यह विचार नहीं आएगा कि प्रेरितों के इन शब्दों से दासता को उचित ठहराए। यह भी मसीहियों ने 19वीं शताब्दी तक किया। प्राचीन काल में दासता समाज का एक दृढ़ और अस्तित्व से जुड़ा भाग थी। हमारे लिए आज इसकी कल्पना करना भी सम्भव नहीं। दासता कभी परमेश्वर की इच्छा नहीं थी – वह मनुष्य का तिरस्कार करती है। फिर भी मन फिराए हुए दास से अब कहा जाता है कि वह हृदय से सेवा करे, मानो वह प्रभु की सेवा कर रहा हो। ठीक वैसे ही स्वामियों से कहा जाता है कि वे अपने दासों के साथ भलाई से व्यवहार करें, और भी अधिक इसलिए कि उनमें से बहुत-से अब उनके भाई थे। मसीह में अब न कोई स्वतन्त्र था, न दास।

यह तथ्य कि प्रेरितों ने प्राचीन घर की व्यवस्था को इस रूप में (पति, पत्नी, बच्चे, दास) सम्बोधित किया, स्पष्ट करता है कि ये निर्देश हमको नहीं, बल्कि हमारे लिए लिखे गए हैं। अन्तर यह है कि हमारे सामाजिक ढाँचे में आज न दासता है, न अपने pater familias, अर्थात् शासन करनेवाले गृहपति, वाला प्राचीन घर। पुरुष और स्त्री को क़ानून में समान अधिकार हैं। और इसके लिए हम केवल आभारी हो सकते हैं। आज बहुत-से साझा आवास हैं, बहुत-से अकेले लोगों के घर और वृद्धाश्रम हैं, जो उस समय नहीं थे, और इसलिए उनके लिए प्रेरितों के कोई निर्देश भी नहीं हैं।

पौलुस स्पष्ट करता है कि pater familias घर का शासक नहीं, बल्कि मसीह सबका प्रभु है। सब पहले इस स्वर्गीय प्रभु के प्रति उत्तरदायी हैं।

तो अब हम इन निर्देशों का क्या करें?

एक व्यापक मत यह है कि स्त्री की अधीनता सृष्टि की व्यवस्था में जड़ी हुई है। पर एकमात्र अच्छी व्यवस्था वह है, जो पतन से पहले थी। बिना पद-क्रम के, बिना पुरुष के सिर होने के और बिना स्त्री की एकतरफ़ा अधीनता के। पतन के बाद ही वह अव्यवस्था उत्पन्न हुई, जिसमें पुरुष अन्यायपूर्वक और बिना किसी अधिकार-पत्र के स्त्री पर प्रभुता करता है। मैं यह नहीं कहता कि यह सदा और मूल रूप से बुरा था, पर कोई इसे वापस नहीं चाहेगा, ठीक वैसे ही जैसे दासता को नहीं। इसलिए हमें इन बाइबल-वचनों को सचमुच उनकी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि के सामने भी समझना होगा।

इसका अर्थ यह नहीं, जैसा जल्दी से निष्कर्ष निकाला जा सकता है, कि परमेश्वर के वचन को अब गम्भीरता से नहीं लिया जाता। इसके विपरीत, जब अधीनता और प्रेम के ये निर्देश ऐसे जिए जाते हैं, तो यह ईश्वरीय आदर्श के अनुरूप है। पर एक उत्तम मार्ग है, जिसे पौलुस और पतरस स्वयं सुझाते हैं। पौलुस एक दूसरे के अधीन रहने की बात करता है (इफिसियों 5:21) और फिर विवाह के सम्बन्ध को एक उदाहरण के रूप में लाता है, जहाँ यह व्यवहार में आता है। **सचमुच पत्नी को भी अपने पति से प्रेम करना चाहिए, यद्यपि नए नियम में यह केवल एक बार माँगा गया है। और ठीक वैसे ही पति को भी अपनी पत्नी के अधीन**

रहना चाहिए। पतरस "वैसे ही हे पतियो" कहकर यही कहता है, जब वह 3:7 में 3:1 की ओर संकेत करता है, जहाँ वह स्त्रियों से अधीन रहने को कहता है। इसके अतिरिक्त वह कहता है कि हम सब एक दूसरे के प्रति दृढ़ता से नम्रता से लिपटे रहें (1 पतरस 5:5)।

आज विवाह को प्राचीन काल की तरह नहीं जिया जा सकता। कुछ लोग इसे एक हल्के रूप में करने का प्रयास करते हैं। **पर यदि अधीनता का आधार सृष्टि की व्यवस्था की एक ग़लत समझ को बनाया जाए, तो यह बाइबल के अनुसार नहीं, तब भी नहीं जब यह अच्छी तरह चलती हो**। मसीही अधीनता (अर्थात् संगी विश्वासियों के बीच, जिनमें विश्वासी पति और पत्नियाँ भी सम्मिलित हैं) दास-जैसी और अपमानजनक नहीं है। वह नम्र, निष्ठावान और प्रेम भरा सम्मान, सहयोग और सहारा है। नम्रता और कोमलता की तरह अधीनता भी एक सामान्य मसीही गुण होना चाहिए। और आदर्श रूप में उसे परस्पर होना चाहिए।

स्वयं अपने विषय में मुझे यह लगा, और दूसरे पुरुषों में भी मैंने यही देखा, कि हम ऐसी माँगों को एकतरफ़ा अधीनता के रूप में बिना किसी भावना के स्वीकार कर लेते हैं। आख़िर उनका सम्बन्ध स्त्रियों से है, पुरुषों से नहीं। हम उन्हें वैसे ही समझते हैं, जैसे हमें सिखाया गया, और जैसे हम स्वयं अपनी कलीसियाओं में और कुछ हद तक समाज में भी ढाले गए हैं। दुःख की बात है कि यह हमारे हृदयों का झुकाव दिखाता है।

जब पहली दृष्टि में स्त्रियों को सीमित किया जाता है, तो हम चौंककर यह क्यों नहीं पूछते कि सम्बन्धित बाइबल-स्थलों को कैसे समझा जाना चाहिए? जिस बात पर हम, यदि वह हम पर लागू होती, प्रश्न उठाते, उससे हम अधिक आसानी से समझौता कर लेते हैं। आइए, हम अपने हृदयों को बदलने दें और यीशु के और पौलुस के विद्यालय में जाएँ।

14 न नर, न नारी

जब लिंग-भूमिकाओं की बात होती है, तो गलातियों 3:28 का अकसर हवाला दिया जाता है:

> [गलातियों 3:26-28] क्योंकि तुम सब उस विश्वास के द्वारा, जो मसीह यीशु पर है, परमेश्वर के पुत्र हो। और तुम में से जितनों ने मसीह में बपतिस्मा लिया है, उन्होंने मसीह को पहिन लिया है।
>
> अब न कोई यहूदी रहा, न यूनानी; न कोई दास, न स्वतन्त्र; न कोई पुरुष और स्त्री (न नर, न नारी); क्योंकि तुम सब मसीह यीशु में एक हो।

मैं अकसर सुनता हूँ कि पौलुस यहाँ उद्धार के विषय में बोलता है, जो यहाँ गिनाए गए सब राष्ट्रीय और धार्मिक समूहों के लिए, और अन्त में दोनों लिंगों के लिए, बिना भेद के खुला है। बात मसीह में होने की है, पर पतित सृष्टि में हमारे वास्तविक जीवन की नहीं। वहाँ ये भेद अब भी उपस्थित हैं।

पर पौलुस पत्री के ठीक आरम्भ में किस विषय को उठाता है? पतरस और यहूदी अन्यजातियों में से आए लोगों से अलग हो गए, ताकि अलग मेज़ों पर बैठकर भोजन करें। यही वह समस्या थी, जिसे गलातियों 3:28 सम्बोधित करता है। अर्थात् कलीसिया की एक बिलकुल व्यावहारिक समस्या, जिसे यह पद सुलझाना चाहता है।

यह सच है कि हम जो हैं, वही रहते हैं, पर सबके लिए कुछ ऐसा जुड़ जाता है, जो उससे बड़ा है जो हम जाति, वर्ग या लिंग के अनुसार हैं: पुत्रत्व। पौलुस पुत्रत्व की प्राचीन स्थिति की बात करता है। इसमें विशेषाधिकार और गरिमा, अधिकार और उत्तराधिकार सम्मिलित थे। यह बेटियों पर लागू नहीं होता था। परमेश्वर का पुत्रत्व वह विश्वासियों को देता है, पुरुषों को भी और स्त्रियों को भी!

यहूदी धर्म में उद्धार, और पुरानी वाचा में जो कुछ उससे समझा जाता था, यहाँ नामित समूहों के लिए पहले से सुलभ था। यूनानी को ख़तना होने की शर्त पर एक नए धर्मान्तरित (प्रोसेलाइट) के रूप में ग्रहण किया जाता था। इस्राएल की प्रजा में स्वतन्त्र और दास थे, जैसे पुरुष और स्त्रियाँ। पौलुस कोई बहुत नई बात नहीं कहता। उद्धार के पहलू से दी गई यह व्याख्या ग़लत तो नहीं, पर यह सब कुछ नहीं है।

बात इससे अधिक की है, अर्थात् मनुष्य की एक समझ की। मूल में यह पद 28 कहता है कि सब मनुष्य परमेश्वर का स्वरूप हैं, सबकी गरिमा एक है, और पापियों के रूप में सबकी समस्या एक है: उन्हें मसीह की आवश्यकता है, और उन्हें मसीह मिलता है। ये तीन जोड़े आगे बढ़ाए जा सकते हैं: बूढ़े और जवान, ग़रीब और धनी, बलवान और निर्बल, बच्चे और माता-पिता, विकलांगता के साथ और उसके बिना जीनेवाले लोग, विधि के अनुसार शुद्ध और अशुद्ध। गलातियों के लिए, समझ में आनेवाली बात है, सबसे पहले यह आता है कि अब मसीहा के परिवार में यहूदी और अन्यजातियाँ सब बराबर और सब एक हैं। सब परमेश्वर के पुत्र हैं। कलीसिया में हम हर एक से परमेश्वर के पुत्र के रूप में मिलते हैं। शेष सब भेद, जो अब भी हैं, पीछे हट जाते हैं और एक दूसरे के साथ हमारे व्यवहार और बोलचाल को अब निर्धारित नहीं करते।

पौलुस इन तीन समूहों का नाम इसलिए लेता है कि उद्धार न पाए संसार में वे एक दूसरे के साथ तनाव में रहते हैं। कलीसिया में ये भेद झगड़े का कारण नहीं बनने चाहिए। यहूदी अपने को परमेश्वर की चुनी हुई प्रजा मानते थे, अन्यजातियों को वे नीची दृष्टि से देखते थे। ख़तने के बिना वे परमेश्वर की प्रजा के भाग नहीं हो सकते थे। दास एक सम्पत्ति थे, जिनका शोषण होता था। उनका कोई मूल्य नहीं था, उनकी कोई आवाज़ नहीं थी और कोई अधिकार नहीं थे। उस समय स्त्रियाँ भी सम्पत्ति थीं और पुरुष से हीन मानी जाती थीं। उनकी भी कोई आवाज़ नहीं थी और अधिकार बहुत कम थे। मसीह में अब हम एक दूसरे से वैसे मिलते हैं, जैसा परमेश्वर सदा चाहता था। बपतिस्मा और विश्वास के द्वारा सब मसीह को माननेवाले बन जाते हैं। मसीह में सब सामाजिक, जातीय और पद-क्रमवादी भेद समाप्त हो गए हैं। कलीसिया में अब केवल भाई और बहनें हैं। वहाँ परमेश्वर की दृष्टि में इन भेदों की अब कोई भूमिका नहीं होनी चाहिए। यदि स्त्रियों और पुरुषों की गरिमा एक है, तो दोनों वे सब सेवाएँ कर सकते हैं, जो कलीसिया में हैं। यह एक तर्कसंगत निष्कर्ष है, चाहे इस पद में बात सेवाओं की न हो।

पौलुस यहाँ उत्पत्ति 1:27 का वाक्यांश "नर और नारी" उठाता है। वह किसी प्रकार के लिंग-निरपेक्ष अस्तित्व का समर्थन नहीं करता। 1 कुरिन्थियों 11 में वह इस बात पर बल देता है कि स्त्रियाँ, जब वे आराधना-सभा में प्रार्थना करें या भविष्यद्वाणी से बोलें, स्पष्ट रूप से स्त्रियों के रूप में दिखाई दें, और पुरुष पुरुषों के रूप में देखे जाएँ; पौलुस मूर्तिपूजक संस्कृतियों और आराधना-रीतियों के ऐसे अलग-अलग पहलुओं के विषय में जानता रहा होगा, जिनमें लिंग को जान-बूझकर छिपाया या मिटा तक दिया जाता था, पर यहाँ बात उसकी नहीं है।

सृष्टि की व्यवस्था और उद्धार की व्यवस्था एक दूसरे का खण्डन नहीं कर सकतीं। उद्धार की व्यवस्था मूल, परमेश्वर द्वारा चाही गई सृष्टि की व्यवस्था को फिर से स्थापित करती है। उसमें पुरुष और स्त्री समान दर्जे के हैं। सुसमाचार के चंगा करनेवाले प्रभाव हैं। पहले कलीसिया में, अर्थात् विश्वासी लोगों के बीच। ये सकारात्मक और क्रान्तिकारी परिवर्तन हैं। यह उद्धार के लिए सामर्थ्य है, जो हज़ारों वर्ष पुरानी पापी संरचनाओं को तोड़ सकती है और पूरी संस्कृतियों और जातियों को बदल और बचा सकती है। अन्ततः दासता का अन्त, हमारा लोकतन्त्र, हमारे स्वतन्त्रता के अधिकार और लिंगों के समान अधिकार भी कुछ हद तक पौलुस के इस वचन से निकले हैं। लम्बे समय में उन्होंने समाज पर अपना प्रभाव फैलाया है। कलीसिया को पुरुषों और स्त्रियों की भूमिकाओं के विषय में इससे पीछे नहीं रहना चाहिए।

यद्यपि यह पद इन भूमिकाओं के विषय में नहीं बोलता, फिर भी यह नहीं कहा जा सकता कि कोई सम्बन्ध ही नहीं है। यह पद एक ऐसी नींव है, जिस पर बहनें स्वतन्त्र हैं कि वे बिना भेद के या एकतरफ़ा अधीनता के हर वह सेवा कर सकें, जिसके लिए उन्हें वरदान या योग्यता मिली है। इसके लिए किसी कोटा-नियम की नहीं, बल्कि एक दूसरे के साथ नम्र और बुद्धिमान व्यवहार की आवश्यकता है।

गलातियों 3:28 को हृदयों पर खोद दिया जाना चाहिए। परमेश्वर पूर्वाग्रह से किसी का मुँह नहीं देखता, तो हमें भी नहीं देखना चाहिए (रोमियों 2:11; याकूब 2:1)।

15 हमारा अपराध-स्वीकार

“पुरुषार्थी भाई” – इसका क्या अर्थ है? 1 कुरिन्थियों 16:13 में पौलुस बहनों और भाइयों से कहता है कि वे पुरुषार्थ करें, पुरुषों जैसे साहसी और बलवन्त बनें। यह स्त्रीत्व के विपरीत नहीं, बल्कि डरपोक व्यवहार के विपरीत है। पुरुषार्थ को मैं यहाँ इस प्रकार समझना चाहता हूँ: हम पुरुषों को पुरुषार्थी इसमें होना है कि हम मसीह में अपनी बहनों के सामने एक कब से बाक़ी अपराध-स्वीकार करने का साहस करें और उसके अनुसार काम भी करें। हम पुरुषों ने व्याख्या का अधिकार अपने लिए ले लिया और उसके साथ कार्य करने का अधिकार भी, जिसके द्वारा हमने स्त्रियों को कलीसिया की सेवाओं से बाहर रखा है।

हम समझते थे कि हम परमेश्वर की सेवा कर रहे हैं, पर हमने उसका उलटा किया!

हे परमेश्वर, याहवे एलोहीम (Jahwe Elohim), पुरुष और स्त्री के सृष्टिकर्ता, हमें क्षमा कर कि हमने ऐसा सोचा, ऐसी माँग की और ऐसा व्यवहार किया, मानो बहनें समान दर्जे की नहीं, बल्कि नीचे दर्जे की हों। कोई सामने खड़ी साथी नहीं, बल्कि हमसे एक सीढ़ी नीचे।

प्रभु यीशु, हमें क्षमा कर कि हमने सोचा कि स्त्रियों को चुप रहना चाहिए और सार्वजनिक जीवन में पीछे रहना चाहिए।

हमें क्षमा कर कि हमने सोचा कि तू नहीं चाहता कि वे तेरा और तेरे सत्य का सबके सामने प्रचार करें।

प्रिय बहनो, हमारी इस ग़लत मनोवृत्ति के लिए हमें क्षमा कीजिए, जिसे हम ईश्वरीय और बाइबल के अनुसार समझते थे! हमें क्षमा कीजिए कि कई स्थितियों में हमने बिना कारण आपके विवेक पर बोझ डाला।

हमें क्षमा कीजिए कि हमने महत्वपूर्ण बातों और प्रश्नों पर आपके बिना चर्चा की और निर्णय लिए। हमने आपकी सलाह नहीं ली!

हम पुरुष विफल हुए हैं। हम अकसर, और बिना जाने, स्वार्थी, हावी होनेवाले, सब कुछ बेहतर जाननेवाले बने रहे। अपने विषय में अन्धे। आप स्त्रियों के विषय में और आपकी बुलाहटों और वरदानों के विषय में अन्धे।

हमें क्षमा कीजिए, जहाँ हम कायर थे और आपको आगे कर दिया और आप पर निर्भर हो गए, जहाँ हमें पुरुष की तरह डटकर खड़ा होना और आगे बढ़ना चाहिए था और आप ठीक ही इसकी आशा कर रही थीं।

हमें हमारी उस उदासीनता के लिए क्षमा कीजिए, उन बातों के प्रति जो आपके लिए कठिन थीं और जिन्हें आप कभी समझ नहीं पाईं। हमने आपसे कभी नहीं पूछा कि आप इसके साथ कैसा अनुभव करती हैं। हमें क्षमा कीजिए कि हमने इन भेदभाव भरी मनोवृत्तियों और शिक्षाओं के विषय में आपकी भावनाएँ नहीं पूछीं।

हमें खेद है। हमसे भूल हुई।

स्वतन्त्र होइए! आनन्द से प्रभु की सेवा कीजिए!

हम आपका साथ देंगे – जैसे आपने सदा हमारा साथ दिया है, हमारे किए सब कामों के बावजूद।

16 अन्त में

बहुत-से मसीहियों ने, जिनके लिए बाइबल ही एकमात्र कसौटी है, "स्त्री-प्रश्न" को कब का सुलझा लिया है और बहनों के लिए मार्ग खोल दिया है। मेरे जीवन में यह समझ दुःख की बात है कि बहुत देर से आई। इसलिए यह पुस्तक भी वास्तव में अपने समय से पीछे है, क्योंकि कब से यह स्पष्ट रूप से पहचाना जाना चाहिए था कि हम कलीसियाई जीवन के सब क्षेत्रों में बहनों की सेवा के बिना नहीं रह सकते। हम पुरुष केवल स्वयं को हानि पहुँचाते हैं, जब हम पुरुष और स्त्री के पद-क्रमवादी दृष्टिकोण को पकड़े रहते हैं। पर विश्वास बदलने में कभी देर नहीं होती।

इस पुस्तक में जिन प्रश्नों पर विचार किया गया है, वे बहुत-से स्थानों पर कब के सुलझ चुके हैं, और मैं पीछे-पीछे देर से आनेवाले के रूप में आ रहा हूँ। लड़ाई कब की लड़ी जा चुकी है। दूसरों ने पिछले 30 वर्षों में इस मोर्चे पर संघर्ष किया है। उनके धर्मवैज्ञानिक कार्यों से मुझे बहुत लाभ हुआ है।

कलीसिया के सामने कहीं अधिक गहरे विषय आ रहे हैं। ऐसे विषय, जो लिंग के प्रश्न को भारी रूप से उलट-पुलट कर देते हैं, आज चर्चा में हैं और समाज की चेतना में ज़ोर-शोर से लाए जा रहे हैं, जैसे उदाहरण के लिए ट्रांससेक्सुअलिटी (लिंग-परिवर्तन)। हमें मसीहियों के रूप में अपने समाज में इनके उत्तर देने होंगे। हम मसीहियों को इस बात को ऊँचा उठाए रखना है कि दो लिंगों का परमेश्वर का विचार अद्भुत है और उसकी रक्षा की जानी चाहिए। पर यदि हम अब भी इसी पर बात कर रहे हैं कि स्त्रियाँ कलीसिया में बोल और सिखा सकती हैं या नहीं, तो हम अन्ततः हर प्रासंगिकता खो देंगे, और सचमुच वर्तमान विषयों पर भी हमें न गम्भीरता से लिया जाएगा, न सुना जाएगा।

इन वर्तमान विषयों में से एक ट्रांसह्यूमनिज़्म (Transhumanismus) है, जो मनुष्य को बाइबल से बिलकुल अलग ढंग से परिभाषित करता है – इसमें बात लिंग के प्रश्न से कहीं अधिक की है। यहाँ हमारी आँखों के सामने बाबेल के एक और गुम्मट का निर्माण उभर रहा है, जो अन्त के समय के उस चित्र में ठीक बैठता है, जैसा बाइबल हमें उसका वर्णन करती है।

"आइए, हम ऐसे मसीही बनें, जो इस संसार के सामने विवाह, परिवार और कलीसिया में पुरुष और स्त्री के प्रेम भरे साथ का जीवन जीकर दिखाएँ। आइए, हम एक उलझे हुए और दिशाहीन समाज में आशा के वाहक बनें, जो सच्चे, खरे आदर्शों की खोज में है। आइए, हम ऐसे आदर्श बनें, जिनकी पहचान दूसरे लिंग के प्रति आदर और सम्मान से हो। तब, और केवल तब, आज के लोग हमें देखेंगे और गम्भीरता से लेंगे भी।"

गाब्रिएले ज़िंगर (Gabriele Singer)

पुरुष और स्त्री के रूप में

प्रेम करना, अगुवाई करना, सिखाना

एक साथ बेहतर!

मिलकर बेहतर!

एक दूसरे के संग बेहतर!



“मैं परमेश्वर के वचन में देखता हूँ कि यीशु ने, जो किसी पुरुष के योगदान के बिना एक स्त्री के गर्भ में आया, स्त्रियों को चुप नहीं कराया, बल्कि इसके विपरीत, उन्हें बोलने के लिए प्रेरित किया। कि उसने इसे ठीक माना कि एक स्त्री रब्बी के चरणों में बैठकर सीखे, जैसे पौलुस गमलीएल के चरणों में बैठा था। और कि उसने एक स्त्री को अपने ऊपर एक महत्वपूर्ण याजकीय सेवा करने दी और उससे अपने गाड़े जाने के लिए अपना अभिषेक पाया। स्त्रियाँ क्रूस के पास सबसे अन्त तक थीं और क़ब्र पर सबसे पहले। 7 में से 5 ‘क्रूस पर के वचन’ केवल स्त्रियों की गवाही से हम तक पहुँचे हैं (रोमी सैनिकों को छोड़कर), और उद्धार-इतिहास की सबसे महत्वपूर्ण आधार-घटनाओं की गवाही केवल स्त्रियों ने दी। यीशु अपने पुनरुत्थान के बाद जान-बूझकर स्त्रियों से मिला और उन्हें यह काम सौंपा कि वे उसके भाइयों को बताएँ कि वह जी उठा है। सदा के लिए यह स्पष्ट करने के लिए वह और क्या कर सकता था कि उद्धार पाई हुई कलीसिया में स्त्री की पूरी समानता परमेश्वर का मूल और अपरिवर्तनीय उद्देश्य है?” क्रिस्टियान बेसे (Christian Beese)

एक असाध्य रोग की तरह, अति प्राचीन, मज़बूती से और गहराई तक जड़ पकड़े हुए और हर जगह फैलने-वाली खरपतवार की तरह, मसीही पुरुषों की स्त्री-सम्बन्धी समझ आरम्भ से ही उनके परिवेश की, और दुःख की बात है कि उनके हृदय की भी, एक प्रतिध्वनि रही है। जाने और अनजाने, कठोर, संयत, बल्कि प्रेम भरे ढंग से भी जिया गया हो, फिर भी बाइबल के और इस प्रकार ईश्वरीय सत्य की ओर लौटने के अतिरिक्त कोई और विकल्प नहीं, जो अकेला स्वतन्त्र करता है।

Hans-Jörg Ronsdorf

“पितृसत्तात्मक सोच से स्त्रियों के प्रति मित्रतापूर्ण सोच तक पहुँचना कोई आसान मार्ग नहीं है। इसके लिए आवश्यक है कि हम अपने संसार और उसके काम करने के ढंग के विषय में, अपने विश्वास और परमेश्वर के

साथ, एक दूसरे के साथ और अपने ब्रह्माण्ड के साथ अपने सम्बन्ध के विषय में जो कुछ समझते थे, उस सबकी फिर से नए ढंग से कल्पना करें। यह परिवर्तन उतना ही कठिन है, जितना हमारे पूर्वजों के लिए ब्रह्माण्ड की पृथ्वी-केन्द्रित समझ से सूर्य-केन्द्रित समझ की ओर बढ़ना था। जिन पहले वैज्ञानिकों ने यह सुझाया कि पृथ्वी सूर्य के चारों ओर घूमती है, न कि उलटे, उन्हें कलीसिया से बहिष्कृत कर दिया गया, क्योंकि यह माना गया कि इससे परमेश्वर की सामर्थ्य को ख़तरा है। इसी प्रकार एक पितृसत्तात्मक विश्व-दृष्टि से अलग होना बहुत कठिन है, जिसमें यह सामान्य माना जाता है कि स्त्रियों की अगुवाई पुरुष करें और उन पर पुरुष हावी रहें, और कि व्यवस्थाएँ और संस्थाएँ पुरुषों द्वारा संगठित और चलाई जाएँ। एक समान अधिकार वाली, समानतावादी विश्व-दृष्टि ऐसी विश्व-दृष्टि है, जो स्त्रियों और पुरुषों को परस्पर सम्बन्ध में देखती है, जो शक्ति बाँटते हैं, एक दूसरे के वरदानों को पहचानते, बढ़ाते और मुक्त करते हैं। और एक दूसरे से समान आदर और समान गरिमा के साथ मिलते हैं।" बारबरा रीड (Barbara Reid)

"जिसे सुसमाचार की आत्मा ने पकड़ लिया है, वह इस बात से सहमत होगा कि भूमिकाओं की एक पितृसत्तात्मक समझ, जो स्त्रियों पर संरक्षक बनकर निर्णय थोपती है और उन्हें परमेश्वर के राज्य के लिए अपंग बना देती है, न केवल अन्याय है, बल्कि उसने परमेश्वर की कलीसिया को अकथनीय हानि पहुँचाई है। चाहे यह कभी भी नीच उद्देश्यों से, सत्ता-संघर्ष की आत्मा में, या जान-बूझकर नीचा दिखाने के लिए न हुआ हो, बल्कि बहुत बार पवित्रशास्त्र की एक दुःखद ग़लतफ़हमी के कारण हुआ हो, फिर भी अब समय है कि अपमानजनक परम्पराओं पर साहस से प्रश्न उठाया जाए और उनसे मुँह मोड़ा जाए, ताकि स्त्रियाँ भी अपने पाँव 'चौड़े स्थान' में रख सकें और यीशु मसीह के द्वारा प्राप्त की गई पूरी मुक्ति का आख़िरकार कृतज्ञता के साथ अनुभव करें।" हार्टमुट क्रूगर (Hartmut Krüger)

बाइबल के पाठों की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि को अनदेखा करने का परिणाम यह नहीं होता कि पाठों के शब्दों का पालन किया जाता है; बल्कि यह कि बाइबल के शब्द अकसर, यदि अधिकतर नहीं, अपने ही वर्तमान की अपनी सांस्कृतिक धारणाओं का प्रक्षेपण-पटल बन जाते हैं। जो बात बहुत-से सुसमाचारवादियों (इवैन्जेलिकल) को एक शाश्वत बाइबल-सत्य के रूप में सुनाई गई, वह वास्तव में 19वीं और 20वीं शताब्दी की उपज है। इसलिए कलीसियाई सेवा में स्त्रियों के समान अधिकारों के लिए खड़ा होना आज के नारीवाद की वर्तमान युग-आत्मा का अनुसरण नहीं है, क्योंकि वहाँ तो कब से कहीं अधिक दूरगामी माँगों की बात हो रही है। वहाँ बात है भूमिकाओं की अदला-बदली की, जैसी वे 20वीं शताब्दी तक थीं, या लिंग को ही पूरी तरह मिटा देने की। विवादित प्रश्नों पर विभिन्न दृष्टिकोणों की गम्भीर चर्चा करना भी कोई कैसे सीखे, जब उसने दशकों तक यही अभ्यास किया हो और इसी के लिए संघर्ष किया हो कि सैद्धान्तिक अंगीकार या विश्वास दूसरों पर थोपे जाएँ?

थॉर्स्टन डीट्ज़ (Thorsten Dietz)

17 लेखक की अन्य पुस्तकें

ये पुस्तकें जर्मन भाषा में प्रकाशित हुई हैं।

Und die Toten leben doch (फिर भी मृतक जीवित हैं), Bielefeld, 1992

Seitenwechsel – Von Adam zu Christus (पक्ष परिवर्तन – आदम से मसीह तक), Bielefeld, 2011

Entrückung, Himmel, Ewigkeit – Ein neuer Blick auf alte Themen (उठा लिया जाना – स्वर्ग – अनंतकाल: पुराने विषयों पर एक नई दृष्टि), Nürnberg, 2015

Gottes Lamm, Golgota und die Ewigkeit (परमेश्वर का मेम्ना – गुलगुता और अनंतकाल), Wuppertal, 2015

Fantastische Himmelwelt, Lehre und Leben der Himmelwelt im Epheserbrief (अद्भुत स्वर्गीय लोक – इफिसियों की पत्री में स्वर्गीय लोक की शिक्षा और जीवन), Nürnberg, 2016

Gott spricht, Eine erklärende Übertragung der allgemeinen Briefe und der Offenbarung (परमेश्वर बोलता है। – सामान्य पत्रियों और प्रकाशितवाक्य का एक व्याख्यात्मक रूपांतर), Sulzberg, 2017

Epheser, nacherzählt, erklärt für heute (पौलुस की इफिसियों को पत्री – पुनर्कथित, व्याख्यायित, आज के लिए), Sulzberg, 2018

Gods good Gospel, Gottes gutes Evangelium (परमेश्वर का शुभ सुसमाचार), Sulzberg, 2019

Markus, nacherzählt, erklärt für heute (मरकुस के अनुसार सुसमाचार – पुनर्कथित, व्याख्यायित, आज के लिए), Sulzberg, 2019

Galater, nacherzählt, erklärt für heute (पौलुस की गलातियों को पत्री – पुनर्कथित, व्याख्यायित, आज के लिए), Sulzberg, 2020

Die Briefe des Johannes, nacherzählt, erklärt für heute (यूहन्ना की पत्रियाँ – पुनर्कथित, व्याख्यायित, आज के लिए), Sulzberg, 2020

Frauen, vergebt uns! – Die Rolle von Frau und Mann (स्त्रियो, हमें क्षमा कीजिए! – स्त्री और पुरुष की भूमिका), Sulzberg, 2020

Ein König voller Pracht – Die gute Botschaft von Jesus, dem Messias (वैभव से भरपूर एक राजा – यीशु मसीहा का सुसमाचार), Augsburg, 2022